श्रृंगार

लक्ष्मीनारायण लाल

'श्रृंगार' सुप्रसिद्व कथाकार लक्ष्मीनारायण लाल का नया उपन्यास है । स्त्री–पुरूष–सम्बन्धों के षाष्वत प्रष्न को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है ।

नर और नारी, आरम्भ में जिस इन्द्रधनुषी मानसिक स्निग्धता में जुड़ते हैं वह परिचय के उत्तरोत्तर ताप से विगलित होने लगती है और एक दिन वे टूटकर रह जाते हैं । श्रीमन्त और पेरिन इसी दाहक मनस्थिति के षिकार हैं । अपने–अपने विवाह–बंधनों को तोड़, वे नितान्त अपरिचय–सम्बन्ध में परस्पर जुड़ते हैं ..... और इस तरह आनन्द के कभी न क्षीण होने वाले स्रोत को पा लते हैं । मन की प्रवृत्तियों का विष्लेषण एवं व्याख्या करने वाला एक उत्कृष्ट उपन्यास, जिसमें कथाकार ने अद्‌भुत रस की सृष्टि की है ।

पहला संस्करण 1975, लक्ष्मीनारायण लाल

SHRINGAR (Novel), by Lakshmi Narayan Lal

अपनी पत्नी आरती को

एकाएक बारिष होने लगी ।

डसने छाता खोल लिया । बालू पर कुछ ही कदम चला होगा कि उसने घूमकर देखा, एक युवती वर्षा से बचने के लिए दौड़ रही है । बिना कुछ सोचे–समझे वह सहज ही रूक गया । युवती चुपचाप उसके छाते के नीचे आ गई ।

दो अपरिचित ।

स्त्री–पुरूष चुपचाप महाबलीपुरम समुद्रतट के उस बालू मैदान को पार करने लगे । अचानक पीछे से समुद्री हवा का तेज झोंका आया । युवती के पैर लड़खड़ाये । पुरूष छाता संभालने लगा । युवती ने दायें हाथ से पुरूष को थाम लिया । और संभलते ही पुरूष को छोड़ दिया ।

बरिष और तेज हो गई ।

युवती का बायां अंग, बांह से लेकर कमर और पैर तक भीगने लगा । पुरूष का दायां अंग उसी तरह गीला होने लगा ।

दोनों एक–दूसरे के षरीर की गंध को महसूस करने लगे । चलते हुए, अंग के स्पर्ष से दोनों एक अजीब तरह का अनुभव पाने लगे ।

पर दोनों बिलकुल चुप थे ।

उनके पीछे महाबलीपुरम का समुद्रतट हाहाकार कर रहा था । तूफानी लहरें जैसे बिलकुल पास आ–आकर टूट रही थीं ।

एकाएक वह रूक गई । पीछे मुड़क वह महाबलीपुरम के उस प्राचीन मंदिर को देखने लगी । तुफानी समुद्र की लहरें मंदिर पर बादल और बिजली की तरह टूट रही थीं । पुरूष की आंखें अनंत सागर में खो गई थीं ।

दोनों फिर चुपचाप आगे बढ़े ।

बालू का मैदान पार करते ही सड़क षुरू हुई । दोनों में से किसी की

इच्छा यह जानने की न हुई कि उन्हें जाना कहां है, वे कौन हैं, क्यों हैं ।

पुरूष के पांव टूरिस्ट होटल की ओर मुड़े । वह भी साथ मुड़ गई ।

होटल पहुंचकर युवती ने पुरूष से कहा – धन्यवाद ।

पुरूष के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया । 'रिसेप्षन' से अपने कमरे की चाभी लेकर वह चुपचाप आगे बढ़ा, तभी लेडी रिसेप्षनिस्ट ने कहा – सुनिए, आपका यह उपहार है । कोई दे गया है । मुबारक हो ।

ताजे फूलों का उपहार था वह । उपहार में लगे कागज के टुकड़े पर अंग्रेजी में लिखा था – सादर श्रीमंत को, विवाह की दसवीं वर्षगांठ पर – नागराजन, मद्रास ।

पहली मंजिल पर अपने कमरे में जाते ही हाथ का वह गुलदस्ता होटल के बेयरे को देते हुए उसने कहा – इसे ले जाओ और जल्दी से गर्म चाय लाओ ।

बेयरा बाहर आया । तभी किनारे वाले कमरे के बाहर तेज घंटी बजी । बेयरा दौड़ा गया । उसी युवती का कमरा था ।

– जल्दी गर्म काफी ले आओ ।

गुलदस्ता वहीं किनारे की छोटी मेज पर रखकर बेयरा चला गया । युवती ने कपड़े बदलकर गुलदस्ते को देखा । फूलों के ढेर में मुंह डालकर वह सूंघने लगी । तभी बेयरा काफी लेकर आया ।

युवती ने पूछा – यह गुलदस्ता किसका है ?

– आपका ।

– किसने दिया ?

– तेरह नम्बर के साहब ने ।

– किसको दिया ?

बेयरा चुपचाप जल्दी से बाहर चला गया । युवती ने काफी पीते हुए टेलीफोन उठाया – कमरा नम्बर तेरह । तेरह नम्बर में टेलीफोन की घंटी बज उठी । उसने चाय खत्म करके फोन उठाया – श्रीमंत, हेलो !

– पेरिन, रूम नम्बर अठारह । मुबारक हो ।

– कैसा ?

– आपका जन्मदिन ।

– नहीं ।

– आपका कोई सालगिरह .....

– धन्यवाद ।

फोन रख दिया ।

काफी पीकर पेरिन अपने कमरे से बाहर निकली। बरामदे में खड़ी होकर महाबलीपुरम का समुद्रतट निहारने लगी । बारिष खत्म हो चुकी थी। षाम घिरने लगी थी।

तभी श्रीमंत अपने कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में आ खड़ा हुआ । वह भी समुद्रतट पर खड़े महाबलीपुरम का मंदिर देखने लगा ।

थोड़ी ही देर बाद वह अपने कमरे में चला आया । दरवाजे को भीतर से बंद करके बिस्तरे पर लेट गया । सुबह से ही वह समुद्रतट पर घूमता रहा । थकान से उसकी आंखें मुंदने लगीं, तभी दरवाजे पर हल्की–सी दस्तक हुई ।

– आप !

– आप .....

श्रीमंत फिर पंलग पर जा लेटा ।

पेरिन कमरे में खड़ी थी ।

कमरे में हल्की–हल्की रोषनी थी । सारी खिड़कियां खुली हुई थीं । परदे समेटे हुए थे ।

श्रीमंत ने कहा – मैं बहुत थक गया हूँ ।

पेरिन बोली – आपको बहुत अच्छी नहीं आती होती । जब से मैं यहॉ आई हूॅ, आपको सुबह से षाम तक समुद्रतट पर अकेले चुपचाप घूमते देखती हूॅ ।

श्रीमंत ने कहा – आज मेरी षादी की आठवीं सालगिरह थी । मैं हर साल यहीं आता था ।

– मैं कुछ नहीं जानना चाहती ।

तेजी से पेरिन बाहर निकल गई ।

रात को दोनों ने एक साथ खाना खाया । चांदनी रात थी । एकसाथ समुद्रतट पर घूमने चले गये ।

पेरिन के मुंह से निकला – मेरी षादी कानपुर में हुई थी । अब पापा के साथ दिल्ली रहती हूॅ । दिल्ली और कानपुर में ऐसा चांद कभी नहीं देखा । थकन और नींद के कारण मुझे चांद टेढ़ा नजर आ रहा है ।

श्रीमंत ने कहा – मैं दिल्ली का हूॅ । पहले कलकत्ता में रहता था ।

दोनों चुपचाप मंदिर की टूटी हुई बाहरी दीवार पर बैठे थे । समुद्र की लहरें पत्थर से टकरा–टकराकर उन पर छींटे बरसा रही थीं । बिना कुछ बोले सहज ही श्रीमंत उठा । अकेले होटल की ओर चल पड़ा । कमरे में आकर सो गया ।

करीब साढ़े बारह बजे पेरिन होटल लौटी । ऊपर बरामदे में चलती हुई, श्रीमंत के कमरे की बंद किवाड़ को हाथ से छुआ । कमरा खुला था । वह अंदर गई । रोषनी जलाकर देखा, वह गहरी नींद में सो रहा था । बड़ी देर तक पेरिन चुपचाप उसे देखती रही, फिर उसके सिरहाने झुककर पहले उसके माथे को चूमा फिर आंखों को ।

अपने कमरे में लौटकर पेरिन आष्चर्यचकित रह गई । जैसे फूलों से उसका सारा कमरा भरा हुआ था । यह क्या बेवकूफी है ।

यह सोचकर उसने फिर फूलों को देखना षुरू किया । और सबको अपने पलंग पर सजा दिया । सारा पलंग फूलों से पट गया । और रात के कपड़े पहनकर आराम से उस पर लेट गयी । थोड़ी ही देर बाद उसे अपनी सुहागरात याद आने लगी । आज से सात साल पहले वह अपने पति अषोक टंडन के साथ कष्मीर में सुहागरात मनाने गई थी । इसका वह प्रेम विवाह था । पूरे तीन वर्षों के प्रेम के बाद वह विवाह हुआ था । दोनों एक–दूसरे से खूब परिचित हो चुक थे । उस रात पेरिन ने अपने पति से कहा था – हमारी तो सुहागरातें मनाई जा चुकी हैं, अब यह नाटक क्यों ?

अषोक ने कहा था – स्त्री को नाटक पसंद है, इसीलिए ।

– नहीं, पुरूष नाटक करता है ।

– यह झूठ है ।

– झूठ नहीं, सच है । क्योंकि पुरूष जब प्रेमी से पति बन जाता है, तब वह स्त्री को प्रेमिका नहीं रहने देता । वह तब उसे पूरी तरह से प्राप्त समझ बैठता है ।

अषोक ने तब गुस्से में कहा था – तुम अपने–आपको समझती क्या हो ?

पेरिन ने उत्तर दिया था – मैं अपने–आपको एक इंसान समझती हूॅ और चाहती हूॅ कि हम एक–दूसरे को पहले एक इंसान समझें फिर प्रेमिका या पत्नी, पति या पुरूष ।

और वह झगड़ा भड़क उठा था । अषोक ने पलंग पर सजी हुई पुष्प–मालाओं को तोड़ा था । वह सब कुछ किया था, जिससे पेरिन को भरपूर चोट लगे, वह पूरी तरह से अपमानित महसूस करे ।

आज पेरिन अपने उस पति अषोक से तलाक लेकर, उससे पूरी तरह से आजाद होकर, यहॉ इस महाबलीपुरम के होटल के एकांत कमरे में उन अपरिचित फूलों की षय्या पर पड़ी सोच रही थी ।

सुबह बड़ी देर तक पेरिन उन्हीं फूलों में बेखबर सोती रही । करीब दस बजे उसकी आंखें खुलीं । आज इस तरह जगकर उसे बहुत अच्छा लगा । उसे आज जीवन में पहली बार ऐसा लगा जैसे वह अपने–आपसे सुवासित हुई है ।

चाय पीते हुए श्रीमंत के कमरे में फोन किया । फोन की घंटी बजती रही । कपड़े बदलकर वह श्रीमंत के कमरे में गई । वह कमरे में नहीं था ।

नाष्ता करके वह समुद्रतट पर गई । मंदिर के खंडहरों में घूमी । समुद्रतट पर देखती रही । सहसा दूर से उसे दिखाई पड़ा, श्रीमंत बालू पर चित लेटा हुआ धूप से मानो नहा रहा है । बिलकुल बेसुध पड़ा हुआ ।

पेरिन की इच्छा हुई, उसके पास जाए । पर सोचा, उसकी आजादी में वह इस तरह दखल क्यों दे ?

मार्च के दिन थे । उस वक्त समुद्र बिलकुल षांत था । उसको इच्छा हुई वह समुद्र की लहरों में नहाये ।

वह कपड़े उतारकर लहरों में जा खड़ी हुई । पर उसे एक अजीब डर लगने लगा । लहरें जैसे उसे बुलाती भी थीं और डराती भी ।

सहसा उसके मुंह से एक पुकार निकली – श्रीमंत !

श्रीमंत दौड़कर पास आ गया ।

– आपको मेरा नाम कैसे पता लगा ?

– आपको मेरा नाम पता है ?

– नहीं ।

– मेरा नाम पेरिन है ।

डसने कहा – नाम जानने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है।

दोनों हंस पड़े ।

पेरिन ने श्रीमंत के मुंह पर पानी फेंकना षुरू किया ।

– आप अकेले क्यों आए ?

– क्योंकि मैं अकेला हूँ ।

– मैं भी अकेली हूँ ।

– यही अच्छा है ! इसे खोइए नहीं ।

पेरिन खिलखिलाकर हंसती हुई श्रीमंत के पास आई । उसके हाथ पकड़कर किनारे की लहरों में दौड़ने लगी ।

दोनों तट पर लेट गए । लहरें दौड़ी हुई आतीं और उनपर सफेद चादर की तरह ओढ़ा जातीं । फिर लहरें चली जातीं ।

दोनों चुप थे ।

पेरिन को अच्छा लगा । यह एक ऐसा पुरूष है जिसे उसके बारे में कुछ भी जानने की कोई दिलचस्पी नहीं है । श्रीमंत को और भी ज्यादा अच्छा लगा । यह एक ऐसी स्त्री है जो मुक्त है और मुक्त रहने का जैसे महत्व भी समझती है ।

दोनों खड़े हो गए । तट पर चुपचाप घूमने लगे । बहुत दूर चलते चले गए । पेरिन के मुंह से निकला – मुझे देखकर तुममें कोई इच्छा नहीं होती ?

श्रीमंत बोला – मैं प्रष्न नहीं पूछता ।

– तुम ऊबते नहीं ?

– परिचय से ।

छोनों की मुक्त हंसी हवा में फैल गई ।

2

वे दोनों मुसाफिर थे । दोनों न जाने कहॉ से अलग–अलग वहॉ घूमने आए थे । दोनों एक–दूसरे से अपरिचित थे और परिचित होना नहीं चाहते थे । दोनों स्वतंत्र थे और आजादी का मतलब भी समझते थे ।

पर दोनों जवान स्त्री–पुरूष थे ।

दोनों के बीच सहज ही किसी अनजान संगीत की षुरूआत हो गई । दोनों को अपने–आप पर एक अजब विष्वास था । दोनों मुक्त थे । पर दोनों जिम्मेदार थे । अपने–आपके प्रति और एक–दूसरे के प्रति । दोनों जितनी देर एक साथ रहते, एक–दूसरे को जीते । अलग होते तो अपने–आपमें उनका जीवन उसी तरह सहज बना रहता । दोनों में कोई रिष्ता नहीं था । दोनों एक–दूसरे से अपरिचित थे और उसी अपरिचय का आनन्द उन्हें सराबोर कर जाता ।

उनके वहां एक हफ्ते के उस भरपूर जीवन ने, साथ और साहचर्य ने लोगों के मन में प्रष्न पैदा कर दिए । समुद्रतट से मंदिर तक, मंदिर से होटल तक उस छोटी–सी दुनिया को लोग प्रष्न–भरी निगाहों से देखने लगे ।

दोनों ने कहा – यहां से कहीं और चलना है । और वह निर्जन समुद्रतट होना चाहिए ।

दोनों हवाई जहाज से त्रिवेन्द्रम आए । दूर, बहुत दूर, केरल के एक समुद्रतट पर, नारियल के जंगल में जहां कुछ मजदूर अपने परिवार के साथ नारियल की रस्सी बनाने का काम करते थे, उन्हीं के बीच ये दोनों रहने लगे ।

वहॉ उनसे किसी ने भी कुछ नहीं पूछा ।

इनकी भाषा न वे समझते थे, न उनकी भाषा ये समझते थे, पर भावों की समझ में कहीं कोई दिक्कत नहीं थी ।

जैसे दो परिन्दे मिलकर एक घोंसला बनाते हैं, उसी तरह श्रीमंत और पेरिन न मिलकर नारियल के पत्तों से एक झौंपड़ी बनाई ।

उस जंगल में उस झौंपड़ी को देखकर श्रीमंत ने अपने–आपसे कहा – देवल एंड कम्पनी के मैंनेजिंग डायरेक्टर श्रीमंत जोषी का असली घर यही थी·····

पेरिन ने उसे देखकर सोचा – लखपती बाप की इकलौती संतान पेरिन टंडन का असली महल यही है·····

और दोनों चुपचाप एक–दूसरे को देखकर उस नारियल के जंगल में कृतज्ञ हो गए।

फिर वे दोनों केरल के उस समुद्रतट पर गये ।

उस बेनाम समुद्रतट पर खड़े होकर दोनों ने अनंत सागर को देखना षुरू किया । सागर की लहरें आ–आकर तट पर तड़पतीं और उन दोनों को घुटने तक भिगो जातीं ।

धीरे–धीरे उन दोनों ने अनुभव करना षुरू किया। उन दोनों के भीतर भी समुद्र है। बिलकुल ऐसा ही समुद्र । और दोनों एक–दूसरे के सामने खड़े हो गए ।

उस क्षण उसे पहली बार महसूस हुआ, वह पुरूष है । वह पेरिन नारी है केवल नारी । स्त्री जिससे आज तक इससे पहले उसका कभी कोई परिचय नहीं हुआ था । और वह पहली स्त्री, दूर, बहुत दूर किसी अपरिचित के सामने खड़ी है । इतने समीप ।

श्रीमंत ने पेरिन को जैसी पहली बार छूना चाहा। उसके पैर कांप गए । उसने पेरिन के दोनों हाथ पकड़ लिए । दोनों एक–दूसरे की ओर खिंचने लगे । दोनों के षरीर से, एक अजीब तरह की यौवनगंध फूटने लगी ।

दोनों के ओठों में, नजरों और सांसों में गाढ़े षरीररस की वर्षा होने लगी । सागर पर पष्चिम में झुके हुए सूरज की रोषनी का संगीत तन की वेदना को और मादक बनाता गया ।

दोनों का अब इस तरह खड़ा रहना मुष्किल था । बालू तट पर दोनों लेट गए । जैसे–जैसे सूरज सागर में डूबने के करीब होता गया, वैसे–वैसे विचित्र रंगीन छायाएं उन पर पड़ती रहीं ।

पेरिन के अंक में मुंह गाड़े, न जाने किस रहस्यलोक में आंखें मूंदे वह प्रकृति के हाहाकार को सुन रहा था ।

सूरज अभी डूब भी नहीं पाया था कि आसमान बादलों से घिर आया । अनजानी जगह का अंधेरा महज एक काला पर्दा नहीं होता, वह अनोखे रहस्यों से भरा होता है । उसी रहस्यद्वार में दोनों प्रवेष करना चाहते थे । उनके आसपास का घुंधलापन, सागर की स्याह कालिमा, और उनके आयताने इतना षोर करता हुआ समुद्र, उस अन्धकार में दोनों को चारों ओर से घेर रहा था ।

– नहीं, मुझे अब डर लग रहा है यहॉ । – पेरिन बोली ।

– किससे ? कैसा डर ?

– पता नहीं ।

श्रीमंत की छाती के अंदर से एक निःषब्द पुकार निकली – पार करो । पार कर दो ।

श्रीमंत के सामने बालूतट पर सागर का सिरहाना लगाए पेरिन बिलकुल मदहोष पड़ी है । दोनों हाथ बालू पर जैसे सो गए हों । उसका मुख, गला, कंधा और भरे हुए वक्ष का सारा रस सामने है । फिर भी जैसे श्रीमंत पेरिन को नहीं देख पा रहा है । पेरिन ने एक बार–आंखें खोलकर श्रीमंत को देखा । फिर मुस्कराकर आंखें मूंद लीं ।

पेरिन ने पूछा – क्या सोच रहे हो ?

– अब कुछ भी नहीं सोचना चाहता ।

– काष, ऐसा ही होता ।

– क्यों ? क्या ?

– ताकि कुछ याद न रहे ।

– नहीं, ताकि सब कुछ भूल जाएं ।

– क्या ?

– सारा अतीत ।

– वह क्या है ?

– वह क्या नहीं है ?

श्रीमंत के दिमाग में उसकी तलाक दी हुई पत्नी मीनाक्षी की तस्वीर उठने लगी । उसके साथ श्रीमंत ऐसा एक भी क्षण क्यों नहीं जी सका ? वह ऐसा क्या था, जो ऐसा जीने से असंभव बना देता था ?

मीनाक्षी कहती थी – तुम आदमी नहीं, जड़ हो। श्रीमंत कहता था – तुम स्त्री नहीं चुड़ैल हो ।

दोनों सागरतट के किनारे–किनारे चलने लगे । लगता था, केरल का वह समुद्र उन्हें अभी निगल जायेगा । दूसरे क्षण लगता था, समुद्र उनका पिता है, बालू–धरती उनकी मॉ है । मॉ–बाप से बिछड़े हुए कितने वर्षों बाद दोनों संतानें उनके पास आईं हैं ।

दोनों अपनी झौंपड़ी की ओर लौट आए । मजदूरों के परिवार झौपड़ियों के बीच प्रसन्न बैठे थे ।

न इनकी भाषा वे लोग समझ सकते थे न उनकी बोली ये दोनों । पर उस भाषा की कोई ऐसी खास जरूरत नहीं पड़ी । किसी को न कुछ पूछना था न कुछ जानना । कितना अच्छा लगा ।

मजदूरों की स्त्रियों ने जैसे बिना समझे, सब कुछ जान लिया । पेरिन उनके साथ मिल गई ।

झौपड़ियों में नारियल के तेल का चिराग । खाने को भात और मछली । सबके साथ भरपेट खाने के बाद श्रीमंत आष्चर्यचकित रह गया ––(कभी मछली नहीं खाई थी । 'वेजीटेरियन' था ।)

– थे ना, पर हो नहीं ।

यह कहकर पेरिन मुस्करा पड़ी ।

वह अकेले समुद्र की ओर टहलने चला गया । लौटा तो उस झौपड़ी के कमरे को महसूस कर दंग रह गया । जंगली फूलों की खुषबू से महमहा रहा था । खुली खिड़कियों से छनकर चांदनी नारियल के पत्तों से बने बिछौने पर आ पड़ी थी। न जाने कहां से, कैसे जंग के फूलों से माला गूंथकर पेरिन ने अपने जूड़े में, गले में, कमर में पहन रखी थी ।

श्रीमंत का मोह अंसख्यगुना हो गया । उसने कांपते स्वर से कहा – मैं समुद्रतट पर तुम्हारी राह देख रहा था, और तुम यहॉ इंतजार कर रही हो ।

यह कहकर वह बिछावन पर बैठने ही जा रहा था कि पेरिन ने कहा – नहीं, नहीं, यहॉ मत बैठो । श्रीमंत सन्न रह गया – किसका इंतजार है ?

– उसीका ।

– किसका ? क्या नाम है ?

– वह ...

– वह कहॉ है ?

– भीतर । बहुत गहरे.....

– आओ उसे बाहर निकालें, ताकि उसे हवा मिले । वह चांदनी में घूमे । हम उसे अपनी आंखों के सामने खेलते देखें ।

पेरिन ने हाथ बढ़ाते हुए बहुत हल्के से कहा – वह है.....

श्रीमंत ने उसे अंक में ले लिया ।

फिर पता नहीं क्या हुआ, पेरिन की सांस तेज चलने लगी । और उसने एक ही झटके में श्रीमंत की कमीज फाड़ दी । उसके मुंह पर ओंठ रखकर बोली – तो उसे बाहर निकालो ।

खड़े–खड़े पेरिन का षरीर श्रीमंत के तन से चिपककर ऊपर और ऊपर खिंचने लगा । और कुछ ही क्षणों में पेरिन, उसके अंक से इस तरह मिल गई, जैसे यही उन दोनों का आदिम–सहज रूप हो, यही बुनियादी प्रकृत रूप हो । वह आष्चर्य में डूबने लगा– पेरिन जैसे कोई दुधमुंहा षिषु हो । अंक में उठी हुई वह – इतनी हल्की । इतनी नन्हीं ।

बड़ी देर तक दोनों एक होकर चुपचाप खड़े रहे । झौंपड़ी के बाहर दो मजदूर अपनी भाषा में बातें करते हुए चले गये । बाहर से हवा का झोंका आया और झौंपड़ी को थपथपाकर चला गया । दोनों उसी तरह बिछावन पर गिर पड़े ।

दोनों एक–दूसरे के भीतर गहरे और गहरे जाने लगे । चलते गये और एक बिन्दु ऐसा आया जहॉ दोनों को रूक जाना पड़ा ।

समुद्र का षोर अब हल्के–हल्के सुनायी पड़ने लगा था । लग रहा था, कहीं वर्षा हो रही है ।

एक–दूसरे के प्रति अजब श्रद्धा और कृतज्ञता से दोनों की आंखें मुंदी हैं । वह सिर उठाकर पेरिन के मुख को निहारने लगा । उसके ओठों के किनारे दोनों नन्हे ताल जैसे अमृतबूंद से लबालब भर गए हैं । जीभ की नोक से उसने पी लिया । पेरिन की आंखें धीरे–धीरे खुलने लगीं । झील के आइने में जैसे कोई वृक्ष झुककर अपनी षक्ल देखता है, ठीक उसी तरह श्रीमंत उन आंखों में अपने–आपको झांकने लगा ।

पेरिन के अंग–अंग पर जैसे मधु बरस गया हो ।

वह आंखों से, ओठ और जीभ से उसका सारा अंग छूने और चूमने लगा । बिलकुल रेषमी स्पर्ष है उसके तन का ।

वह बिछावन से उठकर जमीन पर पड़ी अपनी साड़ी उठाने को हुई । तब श्रीमंत ने देखा कैसा मादक, मोहक षरीर है पैरिन का ! इतना भरा–पूरा वक्ष, इतना खूबसूरत पेट ! इतनी पतली कमर ! और नीचे का भाग जैसे तराषा हुआ । कसी हुई जांघें, सीधे पांव ।

साड़ी उठाने के लिए पेरिन जैसे ही नीचे झुकी, श्रीमंत ने उसे पीछे से अंक में उठा लिया । और वह पेरिन की पीठ को, बांहों और कंधे को चूमने लगा ।

थोड़ी देर बाद श्रीमंत अलग हट गया । अलग होते ही उसे अपने अंग में दर्द महसूस हुआ । पेरिन साड़ी पहनने लगी । एकटक श्रीमंत को देखने लगी ।

– क्या देख रही हो ?

– वह ··· उसे ।

– वह क्या है ?

– क्या नहीं है ?

हंसते हुए दोनों ने एक–दूसरे को बांध लिया । श्रीमंत् को तब होष आया जब उसे सुनाई दिया – पेरिन बेतरह कराह रही है ।

श्रीमंत उठने लगा ।

पेरिन ने उसे और जकड़ लिया ।

श्रीमंत बोला – तुम्हें दर्द हो रहा है ।

– क्या ?

– तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है ।

– कौन कहता है ?

– तुम कराह रही थीं ।

– बेवकूफ ··· नासमझ ।

यह कहती हुई पेरिन श्रीमंत के चौड़े स्वस्थ अंक पर बिछ गई । उसके वक्ष को नाखून से काटने लगी । मुटठी् बांधकर उसके सीने में गाड़ने लगी ।

– कैसा लग रहा है ? पेरिन ने पूछा ।

– दर्द करता है । चोट लगती है ।

– क्यों करता है ?

– हममें जान है इसलिए ।

– जान क्यों है ?

– है ।

– कहॉ से आई ?

– प्रकृति से – नेचर से ।

– वही प्रकृति, वही नेचर तो कराह रही है । और तुम कहते तो मुझे दर्द हो रहा है । यह दर्द क्या है ?

– तुम :

– नहीं, तुम ।

– नहीं, वह ।

– नहीं, नहीं, यह पूरी सृष्टि । यह पूरा ब्रह्मांड ।

– मेरी ...

– नहीं, मेरी नहीं अपनी ...

श्रीमंत की उमड़ती हुई सांस पेरिन के बायें कंधे और कान पर बरसने लगी । पेरिन की फूलती हुई सांसों के बीच टूटती हुई आवाज श्रीमंत के गले को बेंधने लगी । पेरिन ने कहा – आह ! दर्द और प्रेम दोनों एक हैं । जितना ही दर्द होगा उतना ही ... श्रीमंत बोला – सब कुछ जैसे सपना लगता है ... तुम कौन हो ? क्या हो ? हम नहीं जानना चाहते । पर ऐसा क्यों है ? मैं कुछ पूछ नहीं रहा ...

एकाएक पेरिन ने श्रीमंत के बोलते हुए ओठों पर अपना दायां हाथ रख दिया । बीच की उंगली ओठों के बीचोंबीच ।

श्रीमंत ने उस एक उंगली का इतना ज्यादा वजन महसूस किया । गले को पकड़कर पेरिन ने अपने सिर को हवा में हिलाया । फिर श्रीमंत के ओंठ के उसी हिस्से को चूमा जहॉ उसने अभी एक उंगली रखी थी ।

पेरिन के ओंठ अब बिल्कुल मुलायम हो गए थे । पर गर्म उतने ही थे ।

उधर सुबह हो रही थी, इधर अब उनकी आंखें लग रहीं थीं । उनकी नींद तब टूटी जब ठीक दोपहर के वक्त मछुए–मछुआरिनीं बालू पर बैठे हुए गा रहे थे और समुद्र के षांत होने का इंतजार कर रहे थे ।

पेरिन और श्रीमंत समुद्रतट पर खड़े हो गए थे । ज्वार का पानी हाहाकार कर तट पर अपना माथा पीट रहा था । दोनों खड़े ही खड़े कभी जांघ तक पानी में चले जाते, कभी कमर तक । अब उन्हें समुद्र का जरा भी भय नहीं लग रहा था । श्रीमंत ने देखा – पेरिन कितनी सुन्दर लग रही है । उसके केष, उसकी जुल्फें समुद्री हवा में उड़ रही है । उसके चेहरे पर एक अजीब थकावट है । कुछ–कुछ नींद भी है । और सारा मुख कितना मादक हो गया है ।

पेरिन ने श्रीमंत को देखा – उसके चेहरे पर कितनी षांति है । लगता है कितना धीरज है उसमें ।

पेरिन ने बढ़कर श्रीमंत के दोनों हाथ पकड़ लिए – चलो कोई प्रार्थना करें ।

– कैसी प्रार्थना ?

– उसी की ... ।

– क्यों ?

– वह हमारा साक्षी हो, न मैं तुमसे कभी कोई आषा रखूंगी, न तुम मुझसे कभी कोई आषा करोगे ।

दोनों ने चुप–मीन होकर वही वचन लिए । वही दिए । सामने समुद्र का ज्वार धीरे–धीरे घटने लगा । षोर कम हो गया ।

मछुआरे बालू पर से नाव खींच–खींचकर समुद्र में डालने लगे । देखते ही देखते तेरह–चौदह नावें लहरों से भागती हुई दूर, बहुत दूर चली गयीं । बालूतट पर बैठी हुई मछुआरिनें दूर समुद्र में लड़ते हुए अपने मछुआरों को देखने लगीं ।

उधर मछुआरे इतने खतरनाक समुद्र में मछलियों को पकड़ रहे थे, इधर तट की लहरों में खड़े हुए श्रीमंत और पेरिन, पेरिन और श्रीमंत अपने मन के सागर में मछलियों का तैरना सुन रहे थे ।

दिन ढलने लगा । दोनों की भूख असह्य हो गई । जंगल की झौंपड़ी में लौटे । एक स्त्री ने पेरिन को इषारे से बुलाया । पेरिन उसके साथ एक झौंपड़ी में चली गयी ।

श्रीमंत अकेले अपनी झौपड़ी में गया । और उसे वहां एक अजीब अकेलेपन ने घेर लिया । उस कमरे में अब तक पेरिन के षरीर की गंध छायी हुई थी । वह एकटक उस बिछावन को देखने लगा । उसकी सारी सिलवटों में जैसे लहरें दौड़ रही थीं ।

चुपचाप वह देखने लगा – अपने–आपको और अपनी मोहनी प्रिया को । ... यहां, इस जगह पहली बार उसे देखा यहां उसके बदन पर तब आधे कपड़े थे । यहां, तब उसके तन पर उसके सिवा और कुछ भी नहीं था । तब वह स्वयं थी सब कुछ अपने–आपमें । यहां हम पहली बार उस तरह एक हो गए थे । यहां तब मैं अपने सिवा और कुछ भी नहीं था । और यहां मैं स्वयं भी कुछ नहीं रह गया था । मीनाक्षी के साथ वे दस वर्ष कितने कठोर थे ! जेलखाने का इतिहास था। यहां यह झौपड़ी एक इतिहास है – जिसे कोई नहीं मिटा सकता, इसे प्रकृति ने खुद लिखा है । उसीके हाथों ही सब कुछ षुरू हुआ है । यह जंगल, यह समुद्र, यह षोर, यह सन्नाटा, यह गंध, ये षब्द कभी नहीं मरेंगे । हर रोज इनका जन्म होगा । यहां इससे पहले कुछ नहीं हुआ मैं हूँ यहां पहला पुरूष । पेरिन है यहां पहली स्त्री ।

सेचते–सोचते श्रीमंत की सांसें फूलने लगीं । रात की स्मृति के साथ वह अपने–आपको ही प्यार करने लगा । वही यह पुरूष है जिसने उस स्त्री को यहां सब कुछ दे देना चाहा था । उस स्त्री को जिसने अभी कहा है, हम एक–दूसरे से कभी कोई आषा नहीं करेंगे । उसी स्त्री ने मुझे सब कुछ देना चाहा । बिना किसी षर्त के । बिना किसी परिचय के ।

अब वहां का अकेलापन उसके लिए असह्य हो गया । यह अपने–आपको अकेले बर्दाष्त नहीं कर सकता । बिना पुरूष के स्त्री की कोई कल्पना नहीं । पुरूष बिना स्त्री पत्थर है । अलिखित बन्द किताब है ।

उसी समय झोंपड़ी के दरवाजे पर आहट हुई । यह ख्याल आते ही कि पेरिन आ रही है उस कमरे में, उसका सारा रक्त झनझना उठा । आंखों के नीचे गाल पर कुछ जलने लगा । कांपते हुए हाथों से उसने दरवाजा खोला । कोई बूढ़ी स्त्री थी, उसे बुलाने आयी थी ।

वह उसके पीछे–पीछे चलकर वहां पहुंचा जहां पेरिन खाना परोस रही थी – नारियल के पत्ते पर मछली और भात ।

खाना खाते समय श्रीमंत की भूख बढ़ती जा रही थी पेरिन की आवाज सुनने के लिए । उसे छूकर देखने के लिए । सामने वही बूढ़ी बैठी कुछ गुनगुना रही थी । दो जवान मजदूरिनें बच्चों को स्तन से दूध पिला रही थीं । और बीच–बीच में इधर देखती हुई हंसने लगती थीं । फिर न जाने क्या बातें करने लगती थीं । यह साफ जाहिर था, उनकी आंखों में, बातों में कोई ईर्ष्या नहीं थी । उनकी हंसी में कोई मजाक नहीं था । लगता था वे बेहद खुष हैं – दोनों को इस तरह एक साथ खाते देखकर ।

खाना खाकर वह बाहर आया । देखने लगा, पेरिन उन मजदूरिनों के साथ–साथ जा रही है । बूढ़ी स्त्री दोनों बच्चों को दायीं–बायीं कोख में दबाए उन्हें खेलाने ले जा रही थी ।

वह पेरिन के पीछे–पीछे चला । रूककर देखने लगा। मजदूर स्त्रियों के साथ पेरिन काम करना चाह रही है और श्रीमंत को भी बुला रही है।

श्रीमंत और पेरिन उनके साथ काम करने लगे । एक बूढ़े मजदूर के मुंह से टूटी–फूटी भाषा निकली – आप मेहमान ।

षेष सारे लोग मुस्करा पड़े । काले–काले षरीर पर सफेद पहनावे और उनके सफेद दांत उस हरे–भरे जंगल में चमक गए ।

थोड़ी ही देर बाद समुद्रतट पर मछुआरिनें गाने लगीं । सारे मजदूर और उनकी स्त्रियां समुद्र की ओर भागे ।

मछुआरों की नावें मछली भरकर तट पर वापस आ रही हैं। अजब दृष्य था । अजब षोर । जो नाव, जैसे ही किनारे पर आने को होती, सारी मछुआरिनें पानी में दौड़कर नाव को थाम लेतीं और पूरी ताकत से उसे बालू पर सरकाती हुई चिल्लातीं – कटलम्मा । दूसरी नाव तब तक आ जाती । फिर उसकी ओर दौड़कर कहतीं – देवम । हा देवम ।

वह छोटी–छोटी मछलियों से भरी नावों को देखने लगा। बिलकुल सफेद सीपी की तरह मछलियां, जिन पर उड़–उड़कर झपट्टा मार रही हैं समुद्र की चिड़ियां, जंगल के परिन्दे । पेरिन ने कभी भी इतनी, इस तरह की मछलियां नहीं देखी थीं । उन्हें छू–छूकर न जाने क्या अनुभव करने लगी।

नावों मं भी पड़ी मछलियां सांस टूटने से पहले छटपटा रही हैं । आसमान से उड़–उड़कर षिकारी परिन्दे उन्हें चोंच और चंगुल में भरकर उठा ले जाना चाहते हैं । मछुआरिनें मछलियों को टोकरी में भर रही हैं । न आने किस बात पर मछुआरे आपस में लड़ने लगे हैं । जंगल के मजदूर नारियल की रस्सी देकर मछली ले रहे हैं ।

श्रीमंत को अनुभव हुआ ।

इस सृष्टि की धुरी है, भोजन – 'फूड' ।

और प्रकृति है काम – सृजन ।

मछुआरिनों ने अपने–अपने आंचल से न जाने क्या निकाला । मछुआरे पीने लगे । बीच में मछली भरे टोकरे । चारों ओर घिरकर बैठे हुए लोगों के साथ श्रीमंत और पेरिन का उस तरह बैठकर सब देखना और किसी से कुछ भी नहीं कह पाना, एक बहुत बड़ा अनुभव था । और इससे भी बड़ा रहस्य अनुभव था – भीड़ में पेरिन के साथ बैठना । और उसके अंग–अंग को देखना । उन अंगों को भोगी हुई स्मृति में पहचानना ।

दोनों एक–दूसरे को बिलकुल निजी व्यक्तिगत ढंग से ही जान रहे थे । समाज और भीड़ के बीच दोनों एक–दूसरे को कत्तई नहीं जानते थे ।

वे ष्यायद सिर्फ इतना जानते थे – दोनों अलग–अलग किन्हीं अनजान षहरों के हैं । दोनों यात्री हैं । दोनों अपने पुराने रास्तों में आग लगाकर एक बिलकुल अनजान रास्ते पर सहसा, पर सहज ही चल पड़े हैं ? दोनों की अचानक भेंट उस महाबलीपुरम में हुई है ।

इसके बाद उन्हें क्या हुआ ? कैसे हुआ ? वे कहीं चले गए, या बिलकुल बहक गए – उन्हें कत्तई कुछ भी पता नहीं । वे कौन हैं ? ऐसा क्या, क्यों हुआ उनमें ?

वे कुछ भी पता लगाना नहीं चाहते । जो कुछ याद था, उसे भूल जाना चाहते हैं। वे सिर्फ हैं । चाहते कुछ नहीं और जितना है एक–दूसरे के लिए, वह इतना ज्यादा है कि उनसे संभाल नहीं संभल रहा है ।

वे दोनों आष्चर्यचकित हैं ।

कृतज्ञ हैं ।

उस भीड़ में बैठे–बैठे श्रीमंत ने पेरिन की पीठ पर हाथ रखा । उसकी उंगलियों को लगा, पेरिन की पीठ पर कंपकंपी फैली है । पीठ के बीचोंबीच ऊपर कंधे से कमर तक की गहराइयों में उसकी उंगलियां खेलती रहीं । सबसे नीचे, जहां से कमर का फैलाव षुरू होता है, वहां उसके हाथ थम गए ।

पेरिन के मुंहसे एक लम्बी सांस निकली । बिना कुछ बोले वह अचानक उठ खड़ी हुई । श्रीमंत की कमर में दायां हाथ बांधे वह तेजी से जंगल की ओर बढ़ी । चलते हुए दोनों रूक जाते । फिर चलते ।

जब दोनों झोंपड़ी के करीब पहुंच गए, तब पेरिन ने कहा – यहां नहीं । चलो वहां दूर समुद्रतट पर ।

– नहीं, मैं थक गया हूं ।

– लो पकड़ो मुझे ।

तेजी से हाथ पर हाथ मारकर पेरिन भागने लगी । श्रीमंत उसे पकड़ने दौड़ा । पेरिन बिलकुल लोमड़ी की तरह दौड़ती है। रास्ता काटती हुई । छिपती हुई । श्रीमंत मुर्गे की तरह दौड़ता है । पैर से नहीं, जांघों से । और उससे तेज दौड़ा नहीं जा रहा है। जांघों में दर्द हो रहा है ।

समुद्रतट । भागती–हंसती हुई एक काले पत्थर पर जाकर बैठ कई । और देखने लगी कि समुद्र में डूबे हुए पहाड़ की एक चोटी के पास सूरज डूबने की तैयारी कर रहा है ।

श्रीमंत आकर उसके सामने पत्थर पर बैठ गया । पेरिन ने श्रीमंत की जांघों पर अपने दोनों हाथ रख दिए । उसे लगने लगा, वे हाथ जांघों में गड़ रहे हैं । मासपेषियों के पीछे हडड्ी तक दबाव महसूस होने लगा ।

पेरिन के हाथ खूबसूरत से ज्यादा निहायत मजबूत हैं । गठे हुए । सीधी सटी हुई उंगलियां । छोटे–छोटे नाखून ।

सहसा पेरिन चीखी – वह देखो ।

सूरज बिलकुल समुद्र के पानी की सतह पर जलते हुए गेंद की तरह रखा हुआ है ।

– देखो सूरज थककर सागर की सेज पर बैठा है ।

– देखो अब सागर में प्रवेष कर रहा है ।

– उतर रहा है ।

– आ रहा है ।

जैसे–जैसे सूरज पानी में उतरने लगा, वैसे ही पेरिन श्रीमंत के अंक में समाती चली गयी । वह बालू की सेज थी ।

वह सागर–सेज थी ।

वह सूरज और समुद्र था । यह सूरज का पूत और समुद्र की बेटी थी । सबको मिला देनेवाली वही एक प्रकृति है – वही मायावती, मोहनी, मदिर, जो कभी नहीं थकती । कभी बूढ़ी नहीं होती । कभी असुन्दर नहीं रहती ।

चारों ओर से धीरे–धीरे अंधेरा घिरने लगा । श्रीमंत ने पेरिन को जगाया । पेरिन ने श्रीमंत को । दोनों जंगल की ओर चले ।

दोनों चुपचाप चल रहे थे ।

वह अब जी रहा था एक अजब अनुभूति को, जो उसे पेरिन से मिली है । एक स्त्री से । कहां–कहां की सोयी हुई भावनाएं वह जगाती है । जो अब तक केवल षरीर था, लगा अब एक संगीत है – एक ही सुर–ताल में । और उसे जीवित किया पेरिन ने । इसे फूंका–जगाया श्रीमंत ने ।

दोनों ने मिलकर उस संगीत को जाना । पैदा किया । और अब उसे हर सांस के साथ जी रहे हैं । यहां कर्ता ही कर्म हो गया है । और कर्म सारी सृष्टि हो रही है।

पर एक फर्क है ।

वही पुरूष और प्रकृति का अन्तर । जब पुरूष किसी स्त्री से प्यार करता है, खासकर जब स्वयं को उसे देने लगता है, उस वक्त वह सिर्फ उसी स्त्री को देता है । लेकिन जब कोई स्त्री किसी पुरूष को देती है तो पूरे मनुष्य को देती है । अपना सम्पूर्ण, सम्पूर्ण मानव को । और जब नहीं दे पाती, तब स्त्री नहीं रहती, पर पुरूष तब भी रहता है, संगीत यहीं से षुरू होता है।

झोंपड़ी में आकर पेरिन बिछावन पर बैठते ही सो गयी । श्रीमंत उसके पांवों पर हाथ रखे हुए, उसे महसूस करता रहा ।

श्रीमंत सोचने लगा, पेरिन ने मुझमें मेरे पुरूष को जगाया। मेरे पुरूष का एक भाग स्त्री है, पेरिन के बिना इस रहस्य को मैं कैसे जान पाता ! देना स्त्री का सहज स्वभाव है, देना पुरूष का अंहकार है और इस अंहकार को पिघलाने वाली केवल स्त्री है । जिसे ऐसी स्त्री नहीं मिली, वह पुरूष नहीं हुआ । ऐसा क्यों ? ऐसा मीनाक्षी से क्यों नहीं संभव हुआ ? उसके लिए मैं जड़ क्यों था ? वह मेरे लिए चुड़ैल क्यों थी ? वह क्यों मुझे हर वक्त केवल षक की निगाहों से देखती थी ? मैं क्यों उसे हमेषा एक झगड़ालू गुस्सेवर स्त्री के रूप में देखता था । इसका जवाब आज श्रीमंत को मिल गया – समर्पण, दे देना पुरूष को । उसके पुरषार्थ को । तभी उसका एक को देना, सबको दे देना है । पुरूष का एक स्त्री को देने का मतलब है सिर्फ एक उसी को देना । इसलिए जब स्त्री समर्पित होती है तब यह नहीं देखती कि वह पुरूष क्या है, कौन है । पर स्त्री को देखकर पुरूष लेना चाहता है, तभी वह सिर्फ दे सकता है, समर्पित नहीं हो पाता ।

3

पूरा मार्च महीना वहीं बीत गया । इस बात का पता उन्हें तब लगा, जब महीने–भर की मजदूरी देने, पहले अप्रैल को षहर से एक आदमी आया ।

षहर के उस आदमी के सामने ये दोनों नहीं पड़े । दूर से उसे देखते ही तरह–तरह के डर उनके सामने खड़े होते । वह आदमी जब तक वहां था, वे दोनों समुद्रतट पर रहे ।

पर जाते–जाते न जाने कैसे उस आदमी को पता चल गया । ये दोनों बुलाए गए । वह आदमी भाषा जानता था ।

– आप लोग कौन हैं ?

श्रीमंत ने बड़ी षांति से कहा – कोई नहीं ।

– यहां कैसे आए ?

– पता नहीं ।

– क्या करते हैं ?

– कुछ नहीं ।

पेरिन को हंसी आ गई । उस आदमी को गुस्सा ।

– यह तुम्हारी कौन है ?

पेरिन को गुस्सा आ गया – आप कौन है ?

– मैं यहां का मालिक हूं ।

– मुबारक हो ।

यह कहती हुई पेरिन श्रीमंत का हाथ पकड़कर सामने से चली गई । वह मजदूरों से उनके बारे में सवाल करने लगा । मजदूरों से उसकी कहासुनी होने लगी । वह चुपचाप चला गया ।

रात में सबने एकसाथ बैठकर मछली–भात खाया । फिर नाच–गाने की तैयारी होने लगी । पहले मजदूरों ने ढोल, मृदंग, बंषी, मंजीरा बजा–बजाकर गाया । फिर औरतों ने अपना लाल फूलों से श्रृंगार कर नाचना षुरू किया ।

पेरिन उनके साथ नाचने लगी । श्रीमंत पुरूषों में बैठा हुआ मंजीरा बजाने लगा ।

जैसे ही चांद जंगल के ऊपर आया और उसकी चांदनी नारियल के घने जंगल से छनकर जमीन पर बरसने लगी, वैसे ही पुरूष सब एक–साथ मिलकर गाने–नाचने लगे ।

जब चांद जंगल से समुद्र के किनारे पहुॅचा तभी वह नृत्य–गान खत्म हुआ ।

सुबह सबकी नींद पहर–भर दिन चढ़े टूटी । पेरिन उठकर बाहर जाने लगी । श्रीमंत ने पकड़ लिया ।

– कहां जा रही हो ?

– तुम्हारे लिए काफी लाने ।

– मैं काफी नहीं पीता ।

– यहां चाय नहीं मिलती ।

श्रीमंत ने उसे अपने अंक में भरकर कहा – हमें सेवा नहीं चाहिए । तुम मेरी प्रिया हो ।

– तो नींद कैसे जाएगी ?

पेरिन के खुले हुए ओठों पर श्रीमंत ने उंगली रखकर चुप करा दिया ।

– सुनो !

– हां ।

– मैं नहीं चाहता, तुम कभी कोई ऐसा काम करो, जिससे तुम मेरी पत्नी लगो ।

– पत्नी क्या करती है ?

– वह कुछ नहीं करती । वह होती है ।

दोनों हंस पड़े । पेरिन हाथ छुड़ाकर चली गई । श्रीमंत ने कमरे में झाड़ू दिया, बिछावन को ठीक किया, इधर–उधर बिखरे हुए कपड़ों को तह लगाकर रखा ।

तभी पेरिन काफी लेकर आई । पूरे कमरे को इस तरह ठीक–ठाक देखकर बोली – इतनी जल्दी क्या थी ?

– तुम्हें जो थी ।

काफी पीते हुए दोनों चुप थे । बीच–बीच में देखकर मुस्करा पड़ते थे । पेरिन ने पूछा – तुम्हें षादी और पत्नी के बारे में क्या पता ?

– वही तो पता है । होष आते ही चारों ओर यही तो दिखाई पड़ता है । खूब पढ़ो, ताकि अच्छी नौकरी मिले, फिर अच्छी षादी हो । षादी माने पति–पत्नी । पर पति–पत्नी क्यों, यही नहीं पता । किसलिए एक स्त्री–पुरूष का संयोग होता है, वही नहीं मालूम । बाकी सब–कुछ हमें जन्म से ही बताया जाने लगता है । कोई बताता भी नहीं, हमें मालूम होने लगता है । हम कभी अपने–आपसे प्रष्न भी नहीं करते ।

वह बोली – प्रष्न तो हमने भी नहीं किया।

– हमने किया नहीं । उसे जिया ।

– तुम बहुत डरपोक थे क्या ?

– बहुत था । और तुम ?

– मैं भी थी ।

श्रीमंत ने एक घूंट में बाकी काफी पीकर कहा – नहीं, तुम मेरी तरह नहीं थीं । मैं जैसा चाहता था वैसी थीं तुम ।

– कैसी ?

– वही···

अपनी काफी खत्म करके पेरिन ने पूछा – अच्छा, मुझमें ऐसी क्या बात है ?

– जो मुझमें नहीं है ।

– क्या ?

– तुम ।

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े । दोनों एक गाढ़े आलिंगन में खो गए । उनके ओठों पर काफी की खुषबू अभी ताजी थी । उसे पीकर ओंठ हटाए नहीं जा सकते थे ।

थोड़ी देर के बाद वे समुद्रतट पर चले गए । उसकी लहरों में नहाने लगे । लहरों के साथ समतल बालू पर बिखरती हुई ताजी सीपियों को वे बटोरने लगे । नहाते–नहाते जब वे थक जाते तब बालू पर आकर चित लेट जाते । पेरिन की सांसों की आवाज श्रीमंत सुनने लगता । श्रीमंत की सांसों को समुद्र की आवाज में मिलाकर पेरिन सुनने लगती ।

पेरिन उसके मुंह पर झुककर बोली – हम यहां अपनी यादगार छोड़ जायेंगे ।

– क्या ?

– तुम बोलो ।

– हमने यहां जिया, बस ।

– उसकी निषानी ?

– कुछ भी नहीं ... एक षून्य, धरना वह छोटा हो जाएगा ।

पेरिन खुषी से समुद्र के किनारे–किनारे भागी । वह उसे पकड़ने दौड़ा । तभी नारियल के जंगल से वही बूढ़ा मजदूर अपने जवान बेटे और उसकी बहू को लेकर आया । सामने आकर बूढ़े ने समुद्र में पास–पास उगी हुई दोनों पहाड़ी चोटियों की ओर इषारा करते हुए कहा – वहां से हमारे इस जंगल को देखिए ।

पेरिन और श्रीमंतने कितनी बार चाहा था वहां जाकर देखना । दोनों कृतज्ञ भाव से बूढ़े के साथ चले ।

बेटा और बहू दोनों मिलकर दूर बालू पर से नाव खींचते हुए समुद्र के पानी में ले आए । बूढ़ा अपने संग दोनों को बैठाए हुए चला ।

जैसे–जैसे वह डूबा हुआ पहाड़ नजदीक आने लगा, समुद्र का गुस्सा साफ दिखाई पड़ने लगा। समुद्र में यह पहाड़ क्यों ? असंख्य वर्षों से वह सागर षायद यही सवाल करता चला आ रहा होगा और उसपर अपना माथा पीट–पीटकर उसे तोड़ देना चाहा होगा।

नाव पहुंच गई । टीलानुमा उस पहाड़ी पर इतने–इतने पेड़–पौधे, जीव–जन्तु होंगे, उन दोनों ने कभी कल्पना न की थी । आगे–आगे वही बूढ़ा पीछे–पीछे श्रीमंत और पेरिन। उनके पीछे बहू–बेटा, सब ऊपर चढ़ने लगे । ऊपर आकर बूढ़ा बैठ गया ।

पेरिन और श्रीमंत वहां से नारियल का जंगल देखने लगे । बूढ़े ने इषारा किया । दोनों दूसरी ओर अनन्त सागर को देखने लगे ।

बूढ़े ने फिर कहा – श्रीमंत को दूर सामने की पहाड़ी पर जाने के लिए । बेटे के साथ श्रीमंत फिर उतर नाव पर जा बैठा । थोड़ी ही देर में दोनों सामने की पहाड़ी पर ।

वहां से श्रीमंत ने पेरिन को देखा । पेरिन वहां से श्रीमंत को निहार रही थी । धीरे–धीरे समुद्र से मानो एक रहस्य संगीत उभरने लगा ।

उस संगीत को अचानक श्रीमंत के मन में मीनाक्षी की एक कड़वी तस्वीर तोड़ने लगी । जाड़े की एक सुबह । श्रीमंत लॉन में धूप लेता हुआ अखबार पढ़ रहा है । घर के भीतर से मीनाक्षी की तेज आवाज आती है । वह नौकरानी को पीट रही है । नौकरानी चीखती है । श्रीमंत दौड़ता है । मीनाक्षी गुस्से में कह रही है – मैं यहां किसी को भी चैन से नहीं रहने दूंगी ।

– आखिर तुम चाहती क्या हो ?

– मैं विधवा होना चाहती हूं ।

श्रीमंत उसके मुंह पर अखबार फेंककर मारता है । मीनाक्षी उसे प्लेट उठाकर मारती है । श्रीमंत के माथे से खून बह निकलता है ।

अचानक श्रीमंत का ध्यान टूट गया । वह देखने लगा – पेरिन हाथ जोड़े पष्चिम दिषा में समुद्र को प्रणाम कर रही है ।

समुद्र का षोर छा गया है । पहाड़ी पर, उसके पेड़–पौधों पर समुद्री हवा का टकराना सुनायी पड़ने लगा । एक क्षण के लिए श्रीमंत के दिमाग में आया – अगर वे दोनों अकेले यहां छोड़ दिये जाएं तो ? तो क्या होगा ?

श्रीमंत पसीने से तर हो गया । उसने अपने–आपको इतना अकेला महसूस किया कि घबड़ाकर चीखा – पेरिन ... रीन ।

उधर से भी पुकार आयी – श्रीमंत ... मंत ।

पेरिन वहां उस चोटी पर बेचैन है । श्रीमंत जैसे यहां इतनी देर में उसके बिना पागल है । दोनों अपनी–अपनी ऊंचाईयों से नीचे उतरने लगे । बूढ़ा हंसने लगा । जवान बेटा और बहू भी हंसने लगे ।

समुद्र पर नाव ने फिर दोनों को मिला दिया । लगा, दोनों पहली बार एक–दूसरे को देख रहे हैं ।

नाव तट पर पहुंची । तब बूढ़े ने बताया – इन दोनों में प्यार नहीं था । तीन दिनों तक वहीं अलग–अलग रखा । फिर बेटा समुद्र तैरकर बहू के पास पहुंचा ।

सभी मिलकर नाव को समुद्र के पानी से बालू पर खींचते ले जा रहे थे ।

4

बिलकुल जैसे परिन्दे करते हैं वे दोनों एक सुबह उस जंगल से, सागरतट से, उड़ चले । कहां ? आकाष के षून्य में दिषा कहां है ? हमने अपनी सुविधा के लिए दिषाएं बना ली हैं । जैसे धर्म बनाया है ।

जो हर क्षण घूम रहा है, हर क्षण बदल रहा है – उसे श्रीमंत और पेरिन एकसाथ महसूस कर रहे हैं । अपने पूरे यौवन से । अपने तन से । दक्षिण भारत से उत्तर की ओर उड़ते हुए वे आए हैं । उन दोनों को मिलाया है, उनके तन के पीछे के षुद्ध रोमांस ने । वही रोमान्स, जो इस पूरी प्रकृति की, सृष्टि की सांस है ।

अपने तन से, उसकी पूरी भूख से, उन दोनों ने पहली बार जाना – मन जैसी कोई चीज नहीं होती जो तन से पाया–भोगा नहीं गया, उसी अभाव का नाम मन है । जहां तन है, उसे खुलकर पूरी तरह जिया गया है, वहां मन नहीं, फिर सीधे बुद्धि की मंजिल आ जाती है । मन के विकारों से अछूती बुद्धि ।

दोनों ने एक–दूसरे को देखा । तब से परिचय ही रोमांस हो गया । उन्होंने एक–दूसरे को बुद्धि से कभी जाना ही नहीं । केवल अनुभव किया ।

यह परिचय, यह अनुभूति किसी पूजा, किसी धर्म, किसी कर्मकांड की देन नहीं, उन दोनों ने मिलकर अपने रक्त से खुद हासिल की थी । यह न अंधेरे में पाया गया था, न उजाले में, षुद्ध प्रकृति के बीच पाया गया था ।

दोनों ने इस लम्बी अकेली, रहस्यमय यात्रा के हर पड़ाव पर, एक ही साथ पाया है – अंधेरा–उजाला, घर–षहर, मेरा–उसका, यह और वह सब मन की झूठी तस्वीरें हैं । सच सिर्फ वह जादू है, जो सारे अन्तर को मिटा देता है । वह जादू पेरिन है । वह जादू श्रीमंत है । वह जादू घूमता है एक ही गोलाई में । जैसे पूरी सृष्टि घूम रही है। वह जादू हर क्षण नये से नया रंग बदलता है, जैसे सारी सृष्टि हर वक्त बदल रही है ।

जाड़े के दिन षुरू होते–होते वे दोनों मध्य प्रदेष पहुंचे । यह कोई छोटा–सा रेलवे स्टेषन था । उसके पास गर्म कपड़े नहीं थे । वे दोनों धूप में खड़े थे । तभी दो आदमी दौड़े आए । उनके हाथ में कई अखबार थे । अखबारों में छपे हुए पेरिन और श्रीमंत के फोटोग्राफ से उन्हें पहचानने लगे ।

एक चिल्लाया – मिल गये । वही हैं ।

दूसरा बोला – मुझे देखने दो ।

घूरते, देखते और चक्कर काटते हुए वह चिल्लाया – मिल गए । हाथ आ गये ।

– क्या है ? श्रीमंत ने डांटा ।

– यह देखिये अखबार ।

दोनों ने देखा । अखबारों में उनके चित्र छपे हैं । 'मिसिंग' । खोये हुए । गुमषुदा की तलाष । दस–दस हजार रूपये इनाम । पेरिन के पापा, श्रीमंत के पिताजी की अपील । निवेदन । सूचना । पता । और उनके चित्र ।

इधर वे अखबारों में अपने–अपने चित्र और गुमषुदा की तलाष की अपीलें पढ़ रहे थे, उधर वे दोनों आदमी आपस में झगड़ने लगे थे । दोनों में एक निहायत पतला था, दूसरा काफी मोटा । लगता है, पतले ने षराब पी रक्खी है ।

मोटा – पहले मैंने देखा ।

पतला – देखने से क्या, मैंने पहचाना ।

मोटा – तुम तो चांट खा रहे थे ।

पतला – सेहत बना रहा था, ताकि पहचान सकूं ।

मोटा – बकवास बंद करो । षिकार हाथ से निकल जायेगा ।

और उधर सच षिकार हाथ से निकल गया था । वे दोनों वहां से खिसकने लगे थे । उधर उन दोनों में मल्लयुद्ध, मुक्का–मुक्की हो रही थी ।

मोटे को जमीन पर गिराकर पतला पेरिन के सामने पहुंचा – सॉरी मैडम, हमने समझा आप ही हैं, मगर उधर अभी एक औरत खड़ी थी धूप में, वह किधर गई ?

पेरिन ने कहा – माफ कीजिए, मैंने नहीं देखा ।

पतला बोला – अयं ! आप माफ कीजिये । मैंने आपको 'डिस्टर्ब, किया । तंग किया । बत्तमीजी की ।

– अच्छा बाबा माफ किया ।

– नेहीं नेहीं, आपको माफ करना ही पड़ेगा । यह क्या बत्तमीजी है, किसी हसीना को इस तरह कोई परेषान करे । वह साला कोई भी हो । मैं इसे 'षूट' कर दूंगा । आप मुझे माफ कर दीजिए ।

– कर दिया ।

– दिया नहीं । दीजिए । वह मोटा उठ रहा है मैं उसे सुला आऊं । वह गुंडा है । लड़कियों को बहुत छेड़ता है।

पतला पीछे मुड़ा । बिलकुल फिल्मी स्टाइल से, फिर दोनों में मुक्का–मुक्की होने लगी ।

पतला एकाएक खड़ा हो गया – अच्छा ले भाई, मार ले मुझे । मैं कुछ भी नहीं बोलूंगा । आखिर तू मेरा दोस्त है ।

मोटे ने पतले के मुंह पर मारना षुरू किया । लोगों की भीड़ वहां जुट आई, पतला बोला – आप लोग मेहरबानी करके यहां से चले जाइए । यहां सवाल दोस्ती का है ... यह कहता हुआ पतला भीड़ को दूर भगाने लगा । मोटे के पास लौटकर बोला – ले दोस्त, मार ले ।

मोटा दौड़ा हुआ श्रीमंत के सामने आ खड़ा हुआ – आप ही की तरह यहां एक आदमी था । आपने देखा उसे ?

– जी नहीं ।

– मुझे षक है, आप ही हैं वह ।

– कौन ?

– जिसे मैंने अभी देखा था । उसके साथ एक हसीन औरत थी । मगर आपके साथ कोई नहीं है । इतने में पतला फिर आ गया । मोटे के पेट में घूंसा मारते हुए कहा – बत्तमीज ! षर्म नहीं आती एक षरीफ आदमी को इस तरह तंग करते हुए ।

उन दोनों में फिर मारधाड़ होने लगी । श्रीमंत और पेरिन वहां से भाग निकले ।

दूर जाने लगे – उन अखबारों की दुनिया से बाहर । ऐसे लोगों से दूर, ऐसे डर से दूर जहां हर वक्त इंसान को दूसरे की 'खामखां' पकड़ से बचने के लिए अपना असली चेहरा छिपाना पड़े । सिफ जिन्दा बचे रहने क लिए कितने सारे झूठ बोलने पड़े ।

ऐसे में बचेगा क्या ? जिन्दा क्या रहेगा ?

दूर । वे ऐसे गांव में पहुंचे, जहां अब तक हर कोई निरक्षर है, षहर के प्रभाव की कोई पहचान नहीं है । वे दोनों अब यह अन्तर साफ देख रहे हैं कि षहरी तालीम की बीमारी कहां तक फैली है । कहां है वह अंचल, जो इससे अभी तक बिलकुल अछूता है ।

वे साफ देख लेते हैं – जहां तक वह बीमारी आई है, वहां के घर बदषक्ल हो गये हैं । पहनावे गंदे और फूहड़ हैं । पेड़–पौधे उस तरह नहीं रह गए हैं, जैसी उनकी कुदरत थी । लोगों की चालें बदल गई हैं । वे उस तरह नहीं हंसते, जैसे पहले हंसा करते थे ।

उस गांव के पूरब की तरफ एक लम्बा–चौड़ा कछार था । पष्चिम की ओर बंजर मैदान । उत्तर दक्षिण की ओर आम के बाग ।

उन दोनों ने उस गांव में देखा – लोग मस्त हैं । बाहर के लोग उन्हें गरीब कहेंगे । कहने दीजिए । गरीब हैं पर गरीबी नहीं जानते । पिछड़े हैं, पर कौन कह सकता है ! षायद यही सबसे आगे हों ।

श्रीमंत ने देखा – गांव की सारी स्त्रियों के बदन पर सिर्फ एक कपड़ा है – केवल साड़ी । ये स्त्रियां अलग–अलग झुंड बनाकर गाती हुई कछार में जाती है । वहां से कमलडंडी ले आती है । आदमी और बच्चे लोग भैंस–गाय–बकरी चराते हैं । बूढ़े लोग रस्सी बनाते हैं। लड़कियां अगराई में सारा दिन खेलती हैं ।

पेरिन गांव की औरतों–मर्दों में मिल गयी । किसी ने कोई सवाल नहीं किया । श्रीमंत इस तरह सबमें आ गया । सबके पास एक ही तरह की मिटट्ी के घर थे । घर में कमरे थे । दरवाजे खुले हुए । सब कुछ खुला हुआ ।

श्रीमंत और पेरिन कहीं भी किसी के घर पर रह जाते । पेरिन सुबह औरतों के साथ कछार में जाती । वहां से रोज ताजे कमलडंडी और लाल–लाल साग ले आती । अपने हाथों से कमलडंडी के भात बनाती और साग की सब्जी । हर घर में दूध–दही ।

दिन चढ़ते–चढ़ते पेरिन और श्रीमंत कछार के आखिरी सिरे पर जहां, कमल–ताल था वहां चले जाते

एक दिन बहुत सुबह ही सुबह वहां गये । सूर्योदय से पहले । यह देखने के लिए कि सूरज के उगने के साथ कमल के फूल कैसे उगते हैं ।

दोनों ने सचमुच उगते हुए देखा । पेरिन उसके अंक में सिर रखकर बोली – ठीक इसी तरह हमारे भीतर उगता है ।

– क्या ?

– तुम ।

– नहीं वह...

जैसे–जैसे सारा तालाब लाल–लाल कमल पुष्पों से भरने लगा, वैसे ही उसकी मादक गंध चारों ओर फैलती गयी ।

श्रीमंत के सारे बदन में रोमांस हो आया । पेरिन उसे देखकर सिहर गयी । श्रीमंत बोला – यह गंध ठीक उसी तरह है...

– किस तरह ?

– तुम्हारे कमर से नीचे जांघों तक जैसी गंध है ।

– 'यू आर षेमलेस' । बेषर्म ।

श्रीमंत को धकेलकर पेरिन तालाब में चली गयी । पूरी तरह खिला हुआ एक फूल ले आई ।

– देखो ।

– मैंने देखा है । सूंघा है । जवान से स्वाद चखा है... ।

पेरिन जोर से चीखी – 'यू आर षेमलेस क्रीचर' । जानवर ! बत्तमीज !

यह कहती हुई पेरिन, श्रीमंत के सीने को पीटने लगी ।

श्रीमंत बोला – मैं इस फूल के बारे में कह रहा हूँ ।

– झूठे ।

– अच्छा, मानता हूँ ।

छोनों हंस पड़े । श्रीमंत ने पेरिन की नाक पर वह फूल रख दिया । उसका सिर झन्ना गया । पेरिन की नाक पर, ओठों पर कमल का पीला–पीला पराग, लाल रज लग गया है । श्रीमंत ने दौड़कर उसे चूम लिया ।

– क्या करते हो ?

– रज–पराग खा रहा हूं । यहां लगा था ।

– सच । मुझे क्यों नहीं दिखलाया ?

– नेचर से पूछो । उसने ऐसी चीजें इस तरह क्यों बनायीं, जिन्हें वह खुद नहीं देख सकता । उसे देखने के लिए कोई और चाहिए ।

यह कहते हुए श्रीमंत दूसरा फूल ले आया । उसे अपनी नाक पर रखकर हंस पड़ा । फूल गिर पड़ा । पर उसका सारा पराग, उसका रज उसकी नाक पर ओठों और चिबुक पर बरस गया था ।

कितना सुन्दर लग रहा था श्रीमंत ! पेरिन ने उसे चूमा नहीं । चखा और स्वाद नहीं लिया । उसे निहारती रही और अंत में उसे आंखों से छूने लगी ।

श्रीमंत ने पीछे मुड़कर देखा । दूसरे तालाब में नीलकमल खिलकर भरा था ।

पेरिन उधर देखने ही दौड़ी नीलकमलों से भरे हुए तालाब में वह घुसती चली गयी ।

श्रीमंत ने पुकारा – पेरिन ।

वह पेरिन षब्द, उस षब्द की पुकार, हवा में उसके कंपन ने एक जादू पैदा कर दिया । और एक रहस्यमय संगीत फैलने लगा ।

गांव में जो सबसे किनारे का घर था, उसमें कल ष्षादी हुई है । उस घर में सिर्फ दुलहा–दुलहन हैं और भेड़–बकरियां हैं । दुलहा–दुलहन घर में नहीं रहते । कमरे में नहीं छिपते । कमरों में किवाड़ लगाने का रिवाज यहां नहीं है । यहां के लोग प्रकृति से प्यार करते हैं । अपने षरीर से जीते हैं । अपने तन में होते हैं । उसे सजाते हैं । तैयार करते हैं ।

पेरिन उन्हें देखती है । दुलहन–दुलहा एकसाथ भेड़–बकरियां चराते हैं । खाना पकाते हैं । संग–संग खाते हैं । और उसी के साथ जीते हैं । अभाव है, पर गरीबी नहीं है । वे जितनी ही चीजों के प्रति अनजान हैं, वही उन्हें उतना प्रेम करने, जीने दे रहा है ।

एक दिन गांव में एक आदमी आया, षहर के नकली, भड़कीले कपड़े और प्लास्टिक, षीषों के गहने लिए हुए । गांव में घूम–घूमकर वह लोगों को इस बात पर सहमत करने लगा कि सामान के बदले गांव वाले दूध दें । स्त्रियां उन कपड़ों और गहनों पर मुग्ध हो गईं ।

श्रीमंत और पेरिन ने गांव वालों को समझाया – तुम्हारे दूध से तुम्हारा ष्षरीर बनता है । षरीर बल है जिससे तुम काम करते हो । तन में गर्मी है तभी तुम्हें ठंड नहीं लगती । तुम्हारे षरीर को और कपड़े–गहने नहीं चाहिए ।

जितना खुला है, उतना ही सुन्दर है ।

षहर एक दैत्य है । बाहर से वह सब कुछ खींचकर निगल लेना चाहता है । ष्षहर राक्षस है, वह कहीं भी कुछ सहज–प्राकृतिक नहीं रहने देना चाहता । षहर एक बनिया है, वह सबको खरीद लेता है । षहर एक भूत–मषीन है जो अपने जादू से मनुष्य को पुर्जा बना देता है ।

गावं वाले और तो कुछ नहीं समझ पाए, भूत–प्रेत–राक्षस, मषीन–कल–पुर्जे की बात जरूर समझ गए । और उस आदमी को गांव वालों ने भगा दिया ।

चौथे दिन पष्चिम दिषा से एक जीप आयी । उसमें षहर के दो पुरूष थे और सात जवान लड़कियां । साथ में वे लोग तमाम भड़कीले कपड़े और नकली गहने ले आए थे । लड़कियों ने गांव के लड़कों को तरह–तरह से लुभाना और फंसाना ष्षुरू किया ।

इस बार श्रीमंत की बातों का उनपर असर नहीं हुआ । गांव में वे कपड़े–गहने बांटकर उसके बदले गांव का सारा दूध–घी लेकर वे चले गए ।

उस रात गांव में षोर मचा । कछार में एक दैव्य–सा जंगली जानवर दिखा । उसकी जलती हुई आंखें कछार से गांव की तरफ बढ़ती चली आ रही थीं । पूरे गांव में हाहाकार मचा हुआ था ।

श्रीमंत एक हाथ में जलती हुई मषाल और दूसरे हाथ में तलवार लिए अकेला उन आंखों की तरफ चला ।

दोनों में मुठभेड़ हो गई । एक–दूसरे को जान से मार देने की लड़ाई छिड़ गई । गांव वाले चारों तरफ से घिर आए । वही दुलहा–दुलहन और पेरिन श्रीमंत के साथ लग गए । सारी रात उस दैत्याकार जानवर से उनकी लड़ाई होती रही । सुबह होने को हुई ।

जानवर कछार की तरफ मुड़कर भागा । श्रीमंत ने उसका पीछा किया । लोग उसके साथ थे । नीलकमल ताल के पास पहुंचते–पहुंचते श्रीमंत ने उसके गले में तलवार भोंक दी । फिर सारे लोग उस पर टूट पड़े ।

जानवर मरा पड़ा था । सुबह हो रही थी ।

श्रीमंत ने कहा – यह वही दैत्य है, जो षहर के उन लोगों को यहां देखकर आया था । उन्हीं कपड़ों और गहनों को सूंघता हुआ ।

गांव के लोगों ने उन कपड़ों और गहनों को उसकी लाष पर रखकर, उसे फूंक दिया ।

दुलहा–दुलहन चिल्लाए – खेलो ! नाचो ! गाओ !

सारा गांव उस कछार में खेलने लगा । स्त्रियां नाचने लगीं । पुरूष गाने लगे ।

अगर तन में खेलना, नाचना, गाना बना रहे तो इसके ऊपर और कुछ भी नहीं चाहिए । जहां यह गायब है, वहीं उन कपड़ों और गहनों की भूख बढ़ती है । जो खाली हो गया है, उसे भरने के लिए । पर वह कभी नहीं भरता । वे दैत्याकार आंखें घूरती रहती हैं । लोग भागते हैं । कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता ।

असली चीज वही खेल है ।

इस खेल के लिए बाहरी चीजें कत्तई नहीं चाहिए ।

असली चीज वही खेल है ।

इस खेल के लिए बाहरी चीजें कत्तई नहीं चाहिए । असली चीज वही खेल है ।

जो अपनी पत्नी मीनाक्षी के साथ श्रीमंत नहीं खेल पाया । जिसे पेरिन अपने षौहर अषोक टंडन के साथ नहीं खेल पाई ।

और उसी खेल को अब श्रीमंत और पेरिन खेल रहे हैं । आदिम, सनातन खेल, षुद्ध रोमांस । जो चारों ओर प्रकृति कर रही है। सबके सामने, सबके बीच । पूर्णमासी का चांद उगता है, समुद्र उसे छूने के लिए पागल है । सूरज उगता है । सारी सृष्टि श्रृंगार करने लगती है । सब कुछ गा रहा है । सब कुछ बह रहा है । एक ही गोलाई है ।

एक ही ताल है । एक ही सुर है ।

पेरिन जब उस गांव के कछार में चलती है, त बवह कैसी मदिर चाल से पैर रखती है । वह गिर क्यों नहीं पड़ती ? मरा हुआ जीव क्यों नहीं चल पाता ? उसके पांव तो मौजूद हैं । उस पर वह खड़ा तक नहीं किया जा सकता । वह क्या है, जो पेरिन की चाल में इतना जादू फूंकता है ?

वही ताल । वही सुर । जो उसके पूरे षरीर में बेसुरा–बेताल हुआ नहीं कि श्रीमंत गिर पड़ेगा । पेरिन धम्म से गिर पड़ेगी । किसी स्त्री को तलाक देना, किसी पुरूष से तलाक मांगना वही तो है ... । वे अलग–अलग आज यही महसूस करते हैं । पुरानी कटु यादें इस बीच अक्सर अपने चेहरे उघाड़कर उनके सामने कौंध जाती हैं ।

श्रीमंत को चलते हुए पेरिन देखती है । उसमें सिहरन होने लगती है । उसका छरहरा बदन । खुला हुआ षरीर । जैसे पहली बार फूल, बौर लेता हुआ आम का पेड़ ।

गांव के लोग सच कहते हैं – आम बौरा रहा है । पेड़ पागल हो रहा है । इसी पागलपन से फूल खिलते हैं । फूल आते हैं । बौराये हुए आम को इस सब का पता नहीं होता । श्रीमंत को भी अब अपना कुछ भी पता नहीं है । वह भूल गया कि वह बी0कॉम0 तक पढ़ा है । उसे जीवन और व्यापार का इतने ज्ञान है । पेरिन भूल गई अपनी सीनियर कैम्ब्रिज तक की पढ़ाई । अपना रूप । अपने सारे अंहकार ।

जब से वह पेरिन के साथ महाबलीपुरम से चला है – अचानक अपने भीतर उग आए, पैदा हुए उस सूक्ष्म, अनाम को भीतर छिपाए हुए – तब से उसमें एक आष्चर्य बढ़ता चला जा रहा है। पहले उसकी आंखें महज देखती थीं, अब वही आंखें नयन हो गई हैं – हर चीज को निहारती है । पहले वह चलता था, अब वह जाता है । पहले वह खाता था, अब वह रस लेता है । पहले वह मैं था, धन–दौलत वाला और इसके साथ और न जाने क्या–क्या, कितना–कितना बहुत सारा, अब वह केवल श्रीमंत है । अब उसे हर चीज गंधमय लगती है । हर चीज वस्तु दिखती है ।

पेरिन जब कुछ देखती है अब उसका सारा मुंह उस ओर आइने की तरह खुल जाता है। अब वह पूरे षरीर से देखती है । पूरी समूची स्त्री अनुभव करती है अपने–आपको । पहले न जाने कितने–कितने रूपों और संबंधों में बंटी थी, बिखरी थी कितनी दिषाओं में ।

अब उनके छूने में, स्पर्ष में ही इतना वनज पड़ने लगता है कि पकड़ने की जरूरत नहीं महसूस होती ।

उनका वजन इतना हल्का है ।

उनका हल्कापन इतना भारी है ।

गांव वालों के जरिये उतने ही दिनों में श्रीमंत ने देख लिया – षरीर का आधार सिर्फ ताकत है, वे कपड़े नहीं । ताकत ही सौन्दर्य है । आभूषण नहीं । स्वस्थ षरीर से बढ़कर कोई खूबसूरती नहीं । और उस षरीर में वही खेल, वही नाच–गान,

पागलपन, उसे जादुई रहस्यमय बना देता है – जो कभी बूढ़ा नहीं होता । कभी नहीं मरता । वह बिना गाये गाता है । बिना खेले खेलता है । बिना नाचे नाचता है ।

दिसंबर बीत गया । जनवरी बीत रही है । इतनी ठंड । इतनी सर्दी । बिना लिहाफ के, गर्म कपड़े बिना, दोनों उसी जादू के भीतर जी रहे हैं । जैसे कि वह पूरा गांव जीता है – आग के सहारे, नाच–गाने के सहारे और षरीर की आदिम गर्मी से ।

श्रीमंत के अंक में अपना मुंह गड़ाये एक दिन पेरिन ने पूछा – तुम्हारा षरीर इतना गर्म क्यों है ?

– यह गर्मी तुम्हारे षरीर से आती है ।

– अच्छरा मेरे भीतर कहां से आती है ।

श्रीमंत ने उसकी जुल्फों से खेलते हुए कहा – असंख्य वर्षों बाद भी जब पृथ्वी की गर्मी रह गई और आगे वह ठंडी नहीं हो पा रही थी, तब 'नेचर' ने उसी गर्मी से स्त्री–पुरूष की रचना की । पृथ्वी की सारी गर्मी स्त्री–पुरूष में आ गई, पहाड़ बर्फ से ढकने लगे । सारी पृथ्वी बर्फ से ढक गई । तब स्त्री–पुरूष उस बर्फ पर चले । खेले । नाचे । गाये । बर्फ पिघलकर नदियां बन गई। हरे–भरे मैदान उभर आए । जीव–जन्तु पैदा हुए । ··· स्त्री ने कहा : मुझे बहुत गर्मी लगती है । थोड़ा दाह तुम ले लो । पुरूष ने ले लिया । फिर एक दिन पुरूष ने कहा : मुझे बहुत गर्मी लगती है । मुझे षीतल करो ।

स्त्री ने उसका दाह ले लिया । तब से यही चल रहा है – वही अनादि–आदि दाह स्त्री– पुरूष को देती है, पुरूष स्त्री को देता है । दोनों मिलकर उसे धरती को देते हैं । धरती उन्हें वापस दे देती है । सृष्टि का सारा सौन्दर्य है यही खेल । वही दाह, वही गर्मी, सब कुछ है । इसे सहना जीवन है । इसे जीना खेल है । इसे भोगना ···

पेरिन ने उसके बोलते हुए मुख को बड़ी तेजी से चूम लिया और चूमती रही । अचानक वह बिल्लियों की तरह हवा में न जाने क्या सूंघने लगी ।

– क्या है ?

– यह सुगंधि कहां से आ रही है ?

श्रीमंत ने चारों ओर निहारा और दूर उसकी आंखें टिक गईं । पेरिन को बांहों में उठाकर बोला – स्प्रिंग ··· बसंत ।

टाम के पेड़ में बौर आ गए थे। उसी की पहली सुगंधि आई थी । पेरिन के पास। दोनों उस आम के पेड़ के नीचे जा खड़े हुए । वहां से सामने आम के घने बाग से अचानक जैसे पुकार आई हो ।

बसंत जैसे ही आता है, उसके आने की पुकार होने लगती है – परिन्दों के बोल से, पत्तों की ध्वनियों से, हवा चलने की आहट से । और सबसे ज्यादा सुगंध सबको होषियार करने लगती है ।

गांव, बाग, कछार, तालाब और हवा में, यहां तक कि उस बंजर मैदान में दोनों बसंत का आना देख रहे थे । महसूस कर रहे थे ।

पेरिन ने पूछा – हमारी यहां की यादगार क्या होगी ?

वह बोला – तुम हर समय याद रखने के लिए क्यों चिंतित रहती हो ?

– मैं स्त्री हूं ··· ।

– तुम इंसान क्यों नहीं हो ?

– तुम बताओ ।

वह चुप हो गया ।

वह परेषान होकर बोली – तुम सच क्यों नहीं बोलते ?

– क्या ?

– यह इन्सान क्या होता है ?

– वह ...

दोनों चुपचाप देखते रह गए ।

वह चीखकर उसके अंक से लिपट गई । जैसे वह बेतरह लजा गई हो । श्रीमंत उसे अंक में बांधे सोचने लगा, इस षब्द को किसने अपवित्र किया ? जिसने इस षरीर को अपवित्र माना । इसे मुंह पर लाना भयभीत होना है – ऐसा किसने किया ? जिसने कर्म को छोटा माना । चिन्तन को श्रेष्ठ । भोग को अधम माना । वैराग्य को महान ।

वह उसकी दायीं बांह पर अपने नाखूनों से लिखती हुई बोली – संगीत में सात स्वर हैं – सरगम, सा रे गा मा पा धा नी (सा) संभोग में कितने हैं जो इस सरगम में नहीं ?

श्रीमंत ने कहा – सा मा गा रे...

पेरिन उसके वक्ष पर लिखते हुए बोली – हमारा चेहरा नंगा है, पर इसे कोई नंगा नहीं कहता । श्रीमंत के पैरों के नीचे जमीन जैसे हिल गई । क्या है यह पेरिन ? क्या चाहती है ? आज सचमुच पहली बार देखा – चेहरा नंगा है । इसे ढकना मुमकिन नहीं है । और पहली बार उसे छूकर प्रष्न जगा, पर यह नंगा क्यों नहीं है ?

जो है वह नहीं कैसे ?

षरारत से वह उसकी खामोषी को तोड़ती हुई बोली – यहां भोग है पर सम् गायब है ।

यह कहकर पेरिन भाग निकली । श्रीमंत उसे अमराई में दौड़ाने लगा । वह छिपती–भागती रही । वह उसे पकड़ लेने की कोषिष करता रहा । एक जगह उसे पकड़कर पूछा – यहां माने ?

– वहां ।

– वहां माने ?

– जो भगवान को मानते हैं, पर अपने को नहीं । मजहब को मानते हैं पर आदमी को नहीं ।

हंसती हुई पेरिन फिर भागी इस बार बहुत तेज । सीधे कछार की ओर । श्रीमंत दौड़ते–दौड़ते एक जगह मंत्रमुग्ध खड़ा रह गया । वह देखने लगा – श्रीमंत और मीनाक्षी अदालत में खड़े हैं । मीनाक्षी तलाक मांग रही है । श्रीमंत का माथा झुका है । वकील बहस कर रहे हैं । मीनाक्षी कह रही है – यह आदमी बेरहम है । चरित्रहीन है । झूठा है । बेईमान है । यह मेरी हत्या करना चाहता है ।... पेरिन रूपवती बिलकुल सफेद घोड़े पर चढ़ी हुई एक हिरन के पीछे षिकार के लिए दौड़ रही है । दौड़ते–दौड़ते हिरन गायब हो जाता है । घोड़ा दौड़ता ही रह जाता है । घने जंगल में वह खो जाती है ।...

अचानक पेरिन कछार से पुकारती है – वहां क्या खड़े सोच रहे हो ?

श्रीमंत मानो जाग गया । वह धीरे–धीरे चलने लगा । पेरिन ने पूछा – तुम थक गए ?

– तुम बिलकुल उलट–पुलट कर देती हो ।

– तुम क्या नहीं करते ?

– पता नहीं ।

– मुझसे सुनना चाहते हो ?

यह कहकर पेरिन उसे अपने संग–संग लिए तालों के बीच चली गई ।

सामने लालकमल ताल ।

पीछे नीलकमल ताल ।

सूरज बिलकुल सामने झुक आया था । उसकी गुलाबी आभा कमल की पंखुड़ियां पी रही थी ।

पेरिन ने कहा – सोचा नहीं । क्या सोचते हो ?

– सिर्फ तुम्हें ।

– नहीं तुम झूठ बोलते हो, मैं सोचने की वस्तु नहीं ।

– और मैं ?

– बिलकुल नहीं । कत्तई नहीं । और कुछ नहीं सोचो ।

– पर यह मुमकिन क्यों नहीं हो जाता ?

दोनों वहीं खड़े–खड़े चुप हो गए । श्रीमंत देखने लगा – पेरिन हर बार बिलकुल नई, अपूर्व पेरिन हो जाती है ।

उनके चारों ओर षून्य था । कछार । फिर जंगल । कछार । षून्य । फिर गांव । ष्षून्य और सन्नाटा । कभी–कभी कमल के पत्ते की पानी पर हिलने की हल्की–सी आवाज हो जाती । हवा का कहीं नामो–निषान तक न था । पर दोनों में से किसी का हाथ जब कहीं भी षरीर पर पड़ता, तो लगता तेज हवा का झोंका आया है और रोंगटे खड़े करके चला गया है ।

पेरिन के मुंह से निकला – आह ! आह !!

श्रीमंत ने अपने हाथों पर षरीर के अगले हिस्से का सारा वजन रखकर पेरिन को उसकी बंद आंखों के भीतर झांककर देखा । पेरिन की जांघे कांप रही थीं । अधखुली आंखों से पेरिन ने कहा – सूरज अब डूब रहा है ?

– हां ।

– तुम उसे देखो । मैं तुम्हारा मुख देखूंगी ।

माथा उठाकर श्रीमंत ने डूबते हुए सूरज को देखना षुरू किया । गुलाबी किरणों की आभा उसके माथे को चूम रही थी । और पेरिन उसी रोषनी से अपनी आंखें बांधे हुए थी । जांघों से चलकर वह कंपन पेरिन की कमर की ओर बढ़ने लगी । श्रीमंत उस चाल की आहट अपने खून के हर बूंद में सुन रहा था ।

सूरज की आखिरी किरण उसके माथे से उड़ गई । पेरिन उसके मुख को दोनों हाथों में जकड़कर हाहाकार कर उठी ।

धीरे–धीरे कछार का वह सूना मैदान अनंत में बदलता गया । और वे दोनों जैसे वस्तु से षून्य होकर उस अनंत में धुल गए । कोई षब्द नहीं । कोई आहट नहीं ।

उसने कहा – पेरी !

– श्री ··· !

उस षून्य ने दोनों के नाम बदल दिए । पेरिन पेरी हो गई, श्रीमंत श्री हो गया । दोनों ने एक–दूसरे के भीतर से ये नाम ढूंढे । षरीर जैसे एक किला है । प्यार उस किले के दरवाजे को खोलकर इसमें छिपे हुए कितने महलों का पता चलाता जाता है । बाहर से भीतर महल तक कितने चोर दरवाजों के रास्ते मिलने लगते हैं । और यह रास्ते चोर दरवाजों के रास्ते होकर गुजरते हैं । और यह रास्ता तब उन्हें कहां ले जाता है ? ऐसी दुनियां में जहां **'मैं'** नहीं रह जाता । उन चीजों की जरूरत खत्म हो जाती है, जिसके लिए लोग लड़ते हैं, जलते और मरते हैं । तलाक देते–लेते हैं ।

उस गांव का हर घर उनका ही घर है । वहां का हर प्राणी उनका अपना है । वहां की पूरी प्रकृति –– षिषिर से लेकर बसंत तक –– जितना वे जिए हैं –– सब उन्हीं का है । क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, कहां रहते हैं –– यह सब अर्थहीन होकर केवल अर्थ यह है कि कौन खाता है, कौन पहनता है और कौन रहता और कैसे खाता है, पहनता है और रहता है ।

एक दिन वही जीप रिफ आई । इस बार उसमें ड्राईवर के साथ सिर्फ वही आदमी थी । इस बा रवह अपने संग कपड़े–गहने नहीं लाया था । कुछ अखबार ले आया था । वही अखबार –– जिनमें श्रीमंत और पेरिन के चित्र छपे हुए हैं –– इष्तहार के साथ । गांव वालों ने जीप को गांव के अन्दर नहीं आने दिया । जीप वाले आदमी ने बताया, वह उन दोनों का पता लेने आया है। वे कौन हैं ? उनके नाम क्या हैं ? अखबार के ये चित्र उनसे मिलते हैं । गांव वालों ने कहा, वे उन्हें जानते हैं, उनके नाम नहीं । वे हैं । कौन हैं –– हम जानना नहीं चाहते । वह आदमी देखते ही चिल्लाया –– पेरिन ।

श्रीमंत ने जवाब दिया –– पेरिन नहीं, पेरीन ।

– दोनों में कोई फर्क नहीं ।

– फर्क है । कोई नहीं जान सकता ।

– श्रीमंत तुम्ही हो । **मैं** पुलिस ले आऊंगा । तुम्हें ···

गांव वाले जीप पर मिटट्ी बरसाने लगे । लगा, वे जीप में आग लगा देंगे ।

जीप तेजी से मुड़ी और उस बंजर जमीन से भाग गई । श्रीमंत जीप के पीछे मिट्टी के गुब्बार, धूल की आंधी को देखने लगा । धीरे–धीरे उसमें कितनी जलती हुई आंखें देखने लगा –– अपने घरों की । पूरे षहरों की । दोनों कछार के रास्ते बिलकुल पूरब दिषा में चले । जिधर से बसंत आया था । फरवरी का महीना बीत रहा था । पैदल बिलकुल पैदल चले जा रहे थे बस्तर के आदिवासियों के देष । उस आदिम पवित्र भूमि षहर के जंगलों में, जहां आज भी माड़िया और मुड़िया गोड़ों की सुरम्य भूमि ष्षहर के अंधकार से दूर है । जहां से सौ मील दूर तक आज भी कोई रेलमार्ग नहीं ।

5

उन्होंने बस्तर के आदिवासियों के आदिजीवन में 'घोटुल' का नाम सुन रखा था – षहर की भाषा में जिसे 'बैचलर्स होम' – कुमार – धर कहते हैं । जहां कुमार युवक–युवतियां एक साथ रहकर अपने प्रेमी और प्रेमिका को तलाषते हैं ।

बस्तर का जंगल अब षुरू हो गया है । जैसे बसंत ऋतु, उनकी उंगलियां पकड़े रास्ता पार कराता, आगे और आगे लिए चला जा रहा है।

अब महुआ के पेड़ों का जंगल आ गया है । उनकी लाल–लाल नयी कोंपलों के बीच रस भरे फूल । नीचे वैसी ही धरती । दोनों के आष्चर्य की सीमा नहीं रही । फूल में इतना रस, इतना भोजन कि उससे पेट भर जाए । कुदरत का यह रहस्य क्या है ? फूल ही जहां फल लगने लगे, यह कैसा खेल है ? महुआ की मादक गंध पूरे जंगल में, हवा में छाई हुई है । महुए के नीचे महुए के रसभरे सफेद–सफेद फूल बिछे हुए हैं । एक महुआ को मुंह में रखते ही सारा मुंह रस से भर जाता है । अंगूर से भी कहीं ज्यादा रसमय, स्वादमय ।

दोनों चलते हुए सिहर उठते हैं । सामने किसी पहाड़ी की ऊंचाई जब षुरू होती है और उस पर जब महुए की नयी कोंपलों वाली रंगीन हवा बहती है तो जैसे उनके षरीर का सारा खून आसमान में उड़ जाने के लिए तड़प उठता है । घाटियों, गुफाओं और नदियों में चक्कर काटती हुई हवा साल, कोहा और सागौन के ऊंचे–ऊंचे झाड़ और बेरी की घनी झाड़ियों से टकराती है ।

पहाड़ी पगडंडी, जंगल । फिर उसके आगे नाला । घाटियां । फिर पहाड़ी । एक ओर चढ़ने में सांस फूलता है । दूसरी ओर उतरने में सांस को अजब चैन मिलती है ।

पेरिन नहीं, पेरीन को सांसों के इस खेल का पता है । श्रीमंत नहीं, श्री इस रहस्य को जानता है । सब कुछ यही प्रकृति है । करती है । कराती है । होती है । पता नहीं क्यों ? क्या चाहती है हमसे, और अपने – आपसे ?

कांटों भरी पगडंडियां

फूलों भरे रास्ते ।

अचानक जंगल में एक अजीब आवाज गूंजी –– सुरंरंरंरं ...

फिर ढोल का संगीत और लड़कियों का गान :

रे रे रे लो रे ए

रे लो रे रे रे ए

रे ला रे एएए...

वे दोनों वही बैठ गए । नीचे सामने हरी घाटी में युवक श्रृंगार किए बाजा बजा रहे हैं –– खूब सजी–धजी लड़कियां नाचती हुई गा रही हैं ।

कूदकर पीछे से एक लड़की आई । नाचती हुई लड़कियों के बीच में कच्चे और पक्के चावल और महुआ के फूल बिखेर दिए । एक लड़का आया। जोत जलाए हुए । उसे वहां की जमीन पर छुलाकर खड़ा हो गया । सारी नाचती हुई लड़कियां बाते–बजाते हुए लड़के, फूंक मारकर उसे बुझाना चाहते । जोत और तेज होती जा रही है ।

संगीत तेज हो गया । जोत थामे हुए लड़क की कमर में हाथ डाले वह लड़की नाचने लगी । दोनों नाचते हुए गाने लगे । देव प्रसन्न हो गए । 'कामुंग' बसंत ऋतु के देवता खुष हैं । अब बरस–भर गांव सुखी रहेगा । कोई बीमारी नहीं । भूत–प्रेत नहीं ।

कोई नगाड़ा बजाता हुआ निकला । लड़के–लड़कियां अपने जोड़े चुनकर रंगीन नाच नाचने लगे । एक–दूसरे की कमर को पकड़े हुए ।

श्री और पेरीन से रहा नहीं गया । पेरीन उसे खींचती हुई उसी समूह में ले गई । दोनों उसी तरह नाचने लगे ।

काफी रात बीत गई । एक बूढ़ा आया । संगीत थम गया । उसने इन्हें देखा । दोनों का सूंघकर बोला – थानागुड़ी ।

थानागुड़ी वह जगह है, जहां मेहमान ठहराए जाते हैं । बल्कि जिन्हें ये मेहमान कबूल कर लेते हैं । थानागुड़ी से सटा हुआ घोटुल है । कुमार और कुमारियों का प्रेमघर।

जब चांद हाथ–भर ऊपर आ जाता है तो उस बस्ती का हर रास्ता उसी घोटुल की ओर मुड़ने लगता है । लड़का खूब सज–धज के बगल में कामदार चटाई दबाए पहुंचता है । लड़की खाली हाथ जाती है –– नीचे से ऊपर तक श्रृंगार किए हुए, जो पहले पहुंचता है वह अपने से बाद में आने वाले का स्वागत करता है। यही सिलसिला थोड़ी देर तक चलता है ।

पेरिन लड़कियों का श्रृंगार निरख रही है । केषों में लकड़ी की कंघियां खोंसे हैं – एक नहीं कई । एक कंघी एक प्रेमी की निषानी है। जिसने जितनी कंघियां खोंस रखी हैं, समझो उसके उतने प्रेमी हैं । गले में रंग–बिरंगी मालाएं –– लाल–सफेद घुंघचियों की, मोतियों की, कांच की रंगीन गुरियों की या लाख की गोटियों की ।

मालाओं से गला भर गया है । कमर से ऊपर तक सब खुला है । केवल वक्ष पर मालाएं हैं । जिनके बीच से उनके पूरे भरे हुए स्तन दिखते हैं । कमर में एक गोटेदार कपड़ा, जो आधी जांघ तक ढकता है। जूड़े में, कलाईयों में, बांहों में रंग–बिरंगे फूलों के गुच्छे । दिन–भर ये लड़कियां पहाड़ों से लड़ती हैं । जंगल में काम करती हैं । कांटों से छिदती है । बस रात को इसी घोटुल में आकर सभी कुछ भूल जाती हैं ।

लड़कों के गले में गुरियों की मालाएं हैं । कान में छोटी–छोटी बालियां । ये मालाएं और बालियां लड़कियों की भेंट होती हैं अपने–अपने प्रेमी को ।

घोटुल में आकर पहले सब गाते–बजाते हैं । लड़के वादक । लड़कियां गाती हैं । फिर सब मिलकर नाचते–गाते हैं । फिर हर प्रेमी अपनी प्रेमिका को लेकर अपने बिछावन पर सो जाता है।

अगली रात श्री और पेरीन उसी आदिवासी युवक–युवतियों के रूप में घोटुल गए । वही वादन, गायन और समूहनृत्य । श्री ने पेरीन के जुड़े में लकड़ी की एक कंघी खोंसी । फिर सबने गीत गाया – जिसका भाव है : मन की बात करने वाले झूठें हैं । इस दुनियां में केवल एक सच है तन, जिसे माटी कहते हैं । माटी ही सब कुछ है । माटी ही पेट भरती है । उसी में अन्न उपजता है । उसीमें सारा जंगल उगा है । नदी–नाले बहते हैं । उसी का साररूप है लालकमल । ... घोटुल की लड़कियां उन्हें एक लालकमल भेंट करती है ।

रात में पेरिन के साथ घोटुल के फर्ष पर सोये हुए श्रीमंत ने पहली बार उस कमल का अर्थ समझा । चारों ओर प्रेमी–प्रेमिकाओं के बीच में घिरा हुआ कमल को देख रहा है । वही कमल पेरिन के भीतर है, उसने महसूस किया है –

पहला कमर के नीचे, दूसरा गहरी नाभि में, तीसरा उसके दिल में, चौथा कंठ और पांचवां सिर में । नीचे से ऊपर तक कमल की पंखुड़ियों में विस्तार होता चला गया है । सहस्र दल का पहला कमल मूल में और असंख्य दलों का कमल षीर्ष में चोटी में ।

इन्ही कमलों को पेरिन ने देखा है श्रीमंत में । दोनों घोटुल में एक–दूसरे के कमलों को छू रहे हैं । उनकी सुगंधि से भरते चले जा रहे हैं ।

पेरिन उसकी बांहों में सो गई है । श्रीमंत उस अंधेरे में देख रहा था –– गौतम बुद्ध और तथागत की अनेक मूर्तियां –– सबके हाथ में वही कमलपुष्प है । क्यों ?

कमल ही क्यां ? प्रेम, वैराग्य, वासना, त्याग, भोग, मोक्ष और सौन्दर्य सबके लिए वही कमल । क्यों ? उसे धीरे–धीरे सहजज्ञान होने लगा । कमल का मुख केवल प्रकाष की ओर खुला है । केवल प्रकाष। कीचड़ में उसकी जड़ है पर खुलता है प्रकाष में । पानी में है, पर पानी उस पर ठहर नहीं पाता ।

भक्तों, संतों और ऋषियों ने ईष्वर का रूप कमल में ही देखा है । वह गुनगुनाने लगा :

नव कंज लोचन ।

कंज मुख

कर कंज पद कंजारूणम् ।

सब कुछ कमल । सारी खेलों का सार । वही दिव्य ज्योति – कमल ।

पेरीन !

पेरीन माने कमल ।

यह नया अर्थ पाते ही श्रीमंत उठ पड़ा । बाहर देखा –– सुबह हो रही थी, पहाड़ियों में सोया हुआ जंगल आंखें खोल रहा था । आम की बौरों और महुआ के फूलों को छूता हुआ पवन बह रहा था ।

पेरीन और श्री घोटुल से बाहर निकल आये । चलने लगे । इधर कोई रास्ता नहीं था । अचानक उन्हें सुनाई पड़ा :

छप्प छप्प छप्प

खप्प खप्प खप्प

खिक्क खिक्क खिक्क ...

थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही देखा – एक युवक और युवती दोनों मिलकर एक छोटे–से पेड़ को काट रहे हैं । युवक एक ओर से कुल्हाड़ी से काट रहा है । युवती दूसरी ओर गंडासा चला रही है। युवती काटती रहती है। युवक पूरे बल से पेड़ को धक्के मारकर गिरा देना चाह रहा है ।

श्रीमंत ने बढ़कर युवती को अलग किया और दोनों मिलकर आधे कटे हुए पेड़ को गिराने लगे । चारों गिरे हुए पेड़ को लादकर बस्ती में ले आए । तब पता चला, पिछले नि घोटुल में दोनों ने एक–दूसरे को चुना है । अब वे अपना नया घर बनायेंगे । आज ही । आज ही रात उसमें सोयेंगे । हरी डाल, हरे पत्ते और हरे बांस की टहनियों से बना हुआ घर । झौपड़ी नहीं घर बनाते हुए युवक ने श्रीमंत से कहा – यह घर तुम्हारा ।

– नहीं । मेरा कुछ नही ।

युवती ने पूछा – प्रेम ?

श्रीमंत ने सिर हिला दिया – नहीं ।

पेरीन बोली – साथी । हम साथी ।

दोनों ने वहां से हटकर अपने–आपसे जानना चाहा । यह क्या है ? हम क्या हैं ?

पेरिन ने ही याद दिलाया –– हमने वचन दिया है, हम कभी एक–दूसरे से कोई आषा नहीं करेंगे ।

श्रीमंत ने पूछा – इसका मतलब क्या है ?

पेरिन नहीं पेरीन बोली – हम यह कभी नहीं कहेंगे कि हमें प्यार है ।

– श्री मेरा प्रेमी है । पेरीन श्री की प्रेमिका है।

– क्यों ?

– फिर हम लोग एक–दूसरे पर अत्याचार करना षुरू करेंगे । प्रेम का नाम लेकर एक–दूसरे का षोषण करेंगे । हम प्रेम की हिफाजत के लिए झूठों का सहारा लेंगे । जो हमारे बीच पैदा हुआ है, उसे बढ़ायेंगे नहीं, उसे विकसित नहीं होने देंगे – जितना है उसी की हिफाजत में हम उसे बरबाद कर डालेंगे । जड़ से ही सुखा डालेंगे ।

वह गहरी नजर से पेरीन को देख रहा था । उसके सामने जैसे कोई परदा फटता चला जा रहा हो ।

पेरीन की आवाज उसके कानों में टकरा रही थी – जो पैदा हुआ है, वह एक जीवधारी है – उसे खुला आसमान चाहिए । सांस लेने के लिए । खुली जमीन चाहिए बढ़ने के लिए । गर्मी और बरसात चाहिए उसमें हर क्षण परिवर्तन के लिए ·· ।

श्रीमंत उसके चेहरे को निहार रहा था । ओठों के दोनों ओर की नन्ही–नन्ही झीलों में जैसे कुछ भर गया था । पेरीन खामोष हो गई थी । एक होता है झरना । एक होती है पहाड़ी झील । पेरीन बिलकुल उसी झील की तरह लग रही थी ।

श्रीमंत के मुंह से निकला – तुमने इससे पहले किसी और से वह प्रेम किया है ?

– वह नहीं, प्रेम किया है ।

– अच्छा ।

– हां, वरना मैं कैसे जानती इसका अत्याचार, इसका अन्याय ।

यह कहती हुई पेरीन जैसे थक गई । नाक और माथे पर पसीना छलक आया ।

– पूछोगे नहीं, वह प्रेम कब और किससे हुआ ?

श्रीमंत ने सिर हिला दिया – नहीं ।

पेरीन ने कहा – देखो हम प्रेमी नहीं है इसीलिए अत्याचारी नहीं हैं। अन्यायी नहीं।

पेरीन ने खुद बताना षुरू किया – जैसे कोई हमसफर साथ बिताता है ।

तब मैं सीनियर कैम्ब्रिज पास करके यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगी । मेरी उससे पहली मुलाकात कालेज कैंटीन में हुई थी । घर आकर अपनी किताब खोलकर पढ़ने को हुई तो मैंने उसमें उसका प्रेमपत्र रखा हुआ पाया । बहुत लम्बा प्रेमपत्र था वह ।

वह कितने दिनों से मुझे निहारता रहा है । कितनी रातें उसने जागकर बिताई थीं । मुझे अच्छा लगा । कई दिनों उदास रहने के बाद मैंने उसके खत का जवाब दिया । प्रेमपत्र का उत्तर प्रेमपत्र से ।

वह क्लास में पढ़ने नहीं आता । कैंटीन में बैठा रहता । लाइब्रेरी में, टैक्सी–स्टैंड पर मेरा इंतजार करता । मैं उससे छिपकर मिलती । मैं उसके लिए क्लास नोट्स बनाकर देती । जिस दिन वह जैसे कपड़े पहनकर आने को कहता, मैं उसीके मुताबिक कपड़े पहनती । वह जहां भी मिलने को कहता, मैं घर में, कालेज में, अपने लोगों से हजार–हजार झूठ बोलकर, बहाने बनाकर उससे मिलती । ऊपर से हम रोज–रोज प्रेमपत्र लिखते ।

वह मुझे किसी ओर के साथ बातें भी करते हुए देखता, तो बेहद उदास हो जाता। धीरे–धीरे मैंने देखा, वह मुझपर इतना अधिकार जमाने लगा है कि मेरा उठना–बैठना, चलना–फिरना, यहां तक कि खाना–पीना भी मुष्किल हो गया है । जैंसे मैं कुछ नहीं हूं, सिर्फ उसकी प्रेमिका हूं । मैं उससे कुछ भी कहती, वह मुझपर रोब जमाता । गुस्सा करता।

एक दिन मेरी तबियत खराब थी । सिर में दर्द था । सखियों के साथ मैं जल्दी ही घर लौटने के लिए टैक्सी–स्टैंड पर खड़ी थी । वह न जाने कहां से आया । कहने लगा – मेरे साथ पिक्चर चलो । मैंने अपनी मजबूरी बतायी । वह नाराज होकर चला गया । अगले दिन मैंने कहा – चलो, पिक्चर देखने चलें । उसने मुझे झापड़ मार दिया ।

मैं रोयी । बहुत रोती रही । सोचा, वह मुझे जरूर मनायेगा । पर वह कितने दिनों तक मुझे मिला ही नहीं । मैं उसे देखने के लिए बेताब । बिलकुल बेहाल । फिर मुझे ही उससे माफी मांगनी पड़ी ।

हम उस साल इम्तिहान में फेल हो गये । मैं जिन्दगी में पहली बार फेल हुई थी । सोचा था, मेरा प्रेम मेरे जीवन के लिए एक बहुत बड़ी प्रेरणा, षक्ति साबित होगा, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । खाने, पीने, सोने की तरफ से मेरी सारी दिलचस्पी मिटने लगी । युनिवर्सिटी जाना मैंने छोड़ दिया । मेरा 'लिवर' खराब हो गया । मुझे पीलिया हो गया । मुझपर दर्द के दौरे पड़ने लगे ।

मुझे अस्पताल में भरती किया गया । वह मुझे एक दिन भी वहां देखने न आया। एक दिन मुझे लगा मैं सचमुच बीमार हूं । और मैंने मर्ज को पकड़ लिया । अपने दिल पर हाथ रखकर पाया कि प्रेम में पुरूष तो स्वयं मनुष्य बना रहता है, पर स्त्री केवल औरत बनी रहती है । मतलब स्त्री इन्सान नहीं है ।

उस क्षण, मैंने अपनी बीमारी को जड़ से पकड़ लिया। उसे समूल उखाड़कर फेंक दिया । और मैं अस्पताल से अगले ही दिन घर लौट आयी ।

जैसे पेरीन को इस बात का कत्तई पता नहीं, कि उसकी आंखों से अब आंसू बह पड़े हैं । वह आगे न जाने क्या कहने चली कि उसकी घिग्घी बंध गयी । श्रीमंत के अंक में वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ी ।

जैसे अपनी ही मां से पिटकर कोई बच्चा उसी मां के अंक में लगकर सो गया हो और नींद में ही सिसक–सिसक पड़ता हो, ठीक उसी तरह पेरीन श्रीमंत के अंक में सोयी हुई रह–रहकर सिसक पड़ती थी ।

श्रीमंत के सामने जिन्दगी की एक नई तस्वीर खिंच रही थी । स्त्री–पुरूष के एक नये अर्थ को पा रहा था ।

और अचानक उसे बड़ी सच्चाई हाथ लगी । स्कूल–कालेजों में युवक–युवती के बीच जो प्रेम पैदा होता है । वह एक ऐसे दुधमुंहे षिषु की तरह है जिसे पालन–पोषण नहीं मिल पाता । चरित्र और समझदारी का पोषण । गहरे भावों का

लालन–पालन । और उसके अभाव में वह षिषु बीमार और पीला होकर हमारे भीतर रह जाता है । नहीं, नहीं । अविकसित बीमार रहकर वह हमारे गले में लटक जाता है । उसी को लादे हुए हम फिर जीवन में आते हैं । ब्याह–षादी करते हैं । घर बसाते हैं । काम करते हैं । तभी जो कुछ भी करते हैं, उससे हमें आनन्द नहीं मिलता । लगता है हम नहीं हैं । हमारी जगह कोई मषीन हमारे भीतर काम कर रही है । सब कुछ पीला–पीला, उदास । मरा–मरा–सा । करने का गौरव नहीं । जीने का कोई भाव नहीं । सिर्फ होना । होना । रहना । जीना नहीं ।

जिधर से उस कछार में अचानक बसंत उन्हें मिला था, उन आदिवासियों में उसका मूल पाकर वे कृतज्ञ रह गए । जिस जंगल, पहाड़ और गुफा से चलकर मनुष्य आदिवासी से, षहर में जाकर नागरिक हुआ है उस पूरे सफर को उन दोनों ने देख लिया ।

पीछे आकर ।

आगे बढ़कर ।

नहीं । यह बिलकुल गलत ढंग है जीवन को देखने का । कौन आगे है, कौन पीछे है – इसका जवाब वही दे सकता है जो जीवन जी रहा है। उसे ढो नहीं रहा है ।

बस्तर के उन आदिवासियों से, खासकर घोटुल में आदिवासी होकर, जीवन के आदि रस को पीकर वे दोनों वहां से चल पड़े । तब बसंत जा रहा था । ग्रीष्म आ रहा था।

दोनों वहां से चल पड़े ।

6

वही दिल्ली ।

दिल्ली स्टेषन पर अलग होते हुए दोनों ने एक–दूसरे के घर का पता तक न पूछा। अपने–आप घर में दोनों अचानक हाजिर हो गये ।

ष्षहर में आकर, षहर का चेहरा उनके सामने उभरने लगा। षहर में कोई किसी के सुख–दुख का भागी नहीं, पर वहां मजा लेता है दूसरे की बदनामी से, 'स्कैण्डल' से ।

श्रीमंत के पिता पंडित दिवाकर जोषी एक कटट्र ब्राह्मण थे । श्रीमंत से दो दिनों तक कुछ बोले तक नहीं । मां बस रोती रहीं और पूछती रहीं – बेटा, तू इतने दिनों कहां था ? तुझे अपने 'बिजनेस' की कोई चिन्ता नहीं ! हमारी कंपनी में घाटा हो गया ।

श्रीमंत के पिता ने एक दिन पूछा – तुम्हें पता है, तुमने क्या किया है ?

– क्या किया है, पता है, पर क्या बुरा किया है, यह नहीं पता ।

पिता ने गुस्से से पूछा – तू इतने महीनों तक कहां आवारा घूमता रहा ? एक खत भी नहीं दिया ! मुझे अखबारों में इष्तहार देने पड़े । हमारी इज्जत धूल में मिल गयी ।

– कैसी इज्जत ?

– जिसकी वजह से हमारा व्यापार चलता है । हमारी कंपनी चलती है । इस बीच कलकत्ता, मद्रास, कानपुर में कंपनी को कितना घाटा हुआ है, कुछ पता है ?

श्रीमंत चुप था ।

थ्पताजी बोलते जा रहे थे – मद्रास से हमारे मैंनेजर नागराजन से सिर्फ इतनी इत्तिला मिली कि तू किसी आवारा औरत के साथ महाबलीपुरम से न जाने कहां गायब हो गया ! कौन थी वह ?

– पता नहीं ।

– तुझे इस घर में रहना है या नहीं ?

– आप कैसी उल्टी–सीधी बातें करते हैं ?

– मैं बाप हूं । देवल एंड कंपनी मैंने बनाई है अपना खून सुखाकर । साफ–साफ बता तू अब तक कहां था ? किसके साथ ? क्यों ?

श्रीमंत गंभीरता से बोला – मैं महाबलीपुरम से पेरिन टंडन के साथ केरल गया । वहां से मध्य प्रदेष आया । बस्तर के जंगलों में आदिवासियों के साथ हम रहे ।

– कौन थी यह पेरिन टंडन ?

– थी नहीं, है ।

– कौन है ? क्या है ?

– नाम के अलावा और मुझे कुछ पता नहीं । हम दिल्ली तक एक संग आए हैं । वह भी षायद दिल्ली में ही रहती है ।

– पर वह है कौन ?

– हमारा और कोई परिचय नहीं ।

– तुम पागल हो गए हो ? जिस औरत के साथ तुम इतने महीने एक साथ रहे, उससे तुम्हारा कोई परिचय नहीं ?

श्रीमंत ने कहा – मीनाक्षी के साथ हमारा इतना बड़ा परिचय था । हम सालों एक साथ रहे । फिर हमारा तलाक क्यों हुआ ? कैसे हुआ ?

– इसके जिम्मेदार तुम्हीं हो ।

श्रीमंत ने बड़े ठंडे स्वर में कहा – अगर मैं अकेला, खुद मीनाक्षी से तलाक का जिम्मेदार हूं तो उस अनजान–अपरिचित स्त्री पेरिन से मिलने और उसके साथ रहने और जीने का भी मैं ही जिम्मेदार हूं ।

पिता अपने पुत्र का मुंह देखते रह गए ।

ठीक यही लड़ाई पेरिन को अपने घर लड़नी पड़ी । उसके पापा दीनबंधु षाह ने कहा – कौन पिता ऐसी लड़की को अपने घर रख सकता है ? तुझे ने अपनी इज्जत का खयाल है, न मेरी ...

पेरिन ने कहा – जो कुछ मैंने किया, उसके लिए मैं खुद जिम्मेदार हूं । पापा, आप मेरी चिंता कत्तई न करें ।

सच्चा गहरा रोमांस जब जमीन पर उतरता है, सच्चाइयों के आमने–सामने खड़ा होता है, तो उसमें टकराहट नहीं होती – कुछ फटता है और उसमें से बिजली कौंधती है। यही उन दोनों के चारों ओर हो रहा था । दोनों जैसे अपने ही घर में अजनबी हो रहे थे। दोनों अपने–आप के दर्षक बन रहे थे । अपने चष्मदीद गवाह हो रहे थे ।

महाबलीपुरम में दोनों पहली बार मिले थे । दोनों ने अपनी आंखों से एक–दूसरे को देखा था । दोनों एक रहस्यमय दुनियां में पहुंचकर एक–दूसरे को जीने लगे थे ।

अब जमीन पर उतरकर सच्चे रोमांस से पूरे यथार्थ में लौटकर वे अपने–आपको देखना चाहते थे ।

श्रीमंत के पिताजी जब उसे डांटते–डांटते खरी–खोटी सुनाते–सुनाते, षब्दों के अभाव में रूक जाते हो श्रीमंत उनकी मदद कर देता – हां, मैं पागल था । मैं पागल हूं । कहीं भटक गया हूं ।

पेरिन के अपने और घर से रिष्तेदार, मिलने–जुलने वाले लोग जब कहते–कहते थक जाते, तब पेरिन जैसे उनकी बातों को पूरा करती – जी हां, मेरा दिमाग खराब हो गया है । मैं कत्तई नहीं चाहती मेरा दिमाग ठीक हो । मैं क्या चाहती हूं, यह आपका सवाल नहीं है । जी हां, मैं पूरी तरह बर्बाद हो जाना चाहती हूं।

डाक्टर, साइकियाट्रिस्ट, वैद्य, हकीम सबके सामने श्रीमंत कहता – हम बहुत अच्छे ईमानदार लोग हैं, इसीलिए खुद घर लौट आए हैं । हम कायर–भगौड़े नहीं हैं, इसलिए सबके सामने आ गए हैं । हम जो कुछ भी हैं उसकी सारी जिम्मेदारी हम पर है। हम प्रेमी–प्रेमिका नहीं हैं, इंसान हैं । सबके सामने हैं ।

पेरिन के पापा ने उसे जैसे तोड़ देने के लिए, एक दिन एक अजीब बात कही – तुम एक धनी घर की मालदार इकलौती संतान हो, वह इष्क का नाटक कर हमारी दौलत हथियाना चाहता है ।

– पापा !

– तुमने अषोक टंडन से वैसा धोखा खाया, फिर भी अकल नहीं आई !

– छीः–छीः–छीः–, पापा ।

चीखती हुई पेरिन सामने से भागी और घर से बाहर दूर सड़क पर गिरकर बेहोष हो गई । और तर्क, अविष्वास की दुनिया से जैसे विष्वास, भाव के जगत में चली गई ।

श्रीमंत के पिता ने एक दिन हारकर पूछा – क्या चाहते हो ?

– वह बताया नहीं जा सकता ।

– तो ?

– सिर्फ पाया जा सकता है ।

– पेरिन से षादी करना चाहते हो ?

– नहीं । बिलकुल नहीं ।

श्रीमंत का यह दो टूक जवाब सुनकर पिताजी एकदम घबड़ा गए । क्योंकि इस बीच पेरिन के पापा और श्रीमंत के पिताजी दोनों सब तरफ से हारकर इस फैसले पर आए थे कि दोनों कचहरी में जाकर षादी कर लें । दिल्ली से बाहर जाकर रहें ।

पिताजी नाराज हो गए – फिर क्या चाहते हो ?

श्रीमंत ने कहा – ऐसा कुछ नहीं, जिसे हमारे अलावा हमें कोई और दे सके ।

– तुम्हारा मतलब क्या है ?

– नहीं कुछ भी मतलब नहीं है ।

इसके बाद पिताजी चिंतित और दुखी रहने लगे । श्रीमंत उनका आज्ञाकारी इकलौता पुत्र रहा है । उसने कभी भी उनका इतना दुख नहीं देखा था । अब मां का भी दुख उसमें आ मिला था । श्रीमंत जानता है – पिताजी ने सहज ही पुत्र को लेकर न जाने कितने स्वप्नों को देखा होगा । क्या–क्या आषाएं पाल रखी हैं । इससे भी आगे श्रीमंत को यह भी पता है कि पिताजी मीनाक्षी की तलाक से पहले ही इतने दुखी रहे हैं । यह दूसरा धक्का वह झेल नहीं पा रहे हैं । पर इसका उपाय क्या है ?

पर श्रीमंत क्या कर सकता है ! वह कहां चाहता है कि उससे किसी को दुख हो। और पिताजी ? उनके सामने श्रीमंत ने इससे पहले कभी इस तरह मुंह खोलकर जवाब नहीं दिया है ।

कई दिन हो गए पिताजी घर से निकले नहीं । कंपनी आफिस में जाना बंद कर दिया । मां ने रोते हुए कहा – वह बीमार पड़ गए ।

– क्या हुआ ?

– तुम उन्हें मारकर ही दम लोगे ।

मां की यह बात उसके लिए असह्य थी । पिताजी के पास पहुंचा । उनके पैर छूकर बोला – पिताजी, ऐसा मत कीजिए ।

वह बोले – तुम भी ऐसा मत करो, वरना मैं जिन्दा नहीं बचूंगा ।

– बताइए न, मैं क्या करूं ?

पिताजी ने श्रीमंत का दायां हाथ थामकर कहा – तुम मेरी एक बात मानोगे ?

– जरूर, क्यों नहीं ।

– सुनो, तुम अपने–आपको पेरिन से काट लो । फिर देखो, तुम कौन हो और वह पेरिन कौन है ?

श्रीमंत चुप रह गया । पिताजी की आवाज उसके कानों से टकराती रही – दरअस्ल वह तुम नहीं हो । वह पेरिन नहीं है। बस एक रोमांटिक खयाल है जिसमें तुम लोग अनजाने बंध गए हो । वह तुम नहीं हो । वह उसीका जादू है । मेरी आज्ञा है, प्रार्थना है – तुम अपने–आपको उससे काटकर देखो । फिर बताओ मुझे ।

– क्या यह मुमकिन है पिताजी ?

– तो क्या यह मुमकिन है कि तुम दोनों बिना षादी–ब्याह किए एक साथ रहो ?

श्रीमंत ने निहायत गंभीरता से कहा – हां, यह मुमकिन है, संभव है ।

पिताजी बोले – अगर वह संभव है, तो मेरी बात को भी संभव करके दिखाओ ।

– दिखाऊंगा ।

और उसी क्षण से श्रीमंत अपने–आपको पेरिन से काटने की कोषिष करने लगा । कोषिष करते ही उसका सिर चकराने लगा । उससे खुद को काटने का मतलब है – पागल हो जाना या षुद्ध संन्यास धारण कर लेना। नहीं, नहीं, सिर्फ पागल हुआ जा सकता है बिना उसके ।

फिर भी श्रीमंत ने वचन दिया है पिताजी को । वह जरूर पेरिन से काटकर अपने को देखेगा । देखेगा – तब वह पेरीन कहां हैं, कौन हैं ? वह खुद क्या है, कौन है, कहां है ?

श्रीमंत एक भयानक वजन के नीचे छटपटाने लगा – पेरिन का वजन । उसके साथ जिए और भोगे हुए क्षणों का वजन । उस षून्य का भार । उस खालीपन का विस्तार।

और वह काटने लगा पेरिन से अपने–आपको । सबसे पहले अपना घर, परिवार, मां–बाप, बाबा–परबाबा ... उसके बाद क्या ? इसके आगे कौन ? समाज । इससे आगे मनुष्य का इतिहास । उसका सारा विकास । सब के परे, सबसे आदि में वह चला गया। वह आदिम अवस्था । जब भाषा नहीं थी, झूठ बोलने के लिए । अपनी सच्चाई को छिपाने के लिए ।

इस आदिम मनुष्य से पीछे भी कुछ है । जब वह नहीं था । तब क्या था ? एक ष्षून्य । एक षक्ति । तब सब कुछ एक था । इसी एक में से अणु बना, परमाणु बना । इनर्जी ... मैटर ... मैटर ... इनर्जी । वही केरल का समुद्रतट । वहीं अनंत क्षितिज का षून्य । वही कमल के फूल । वही लालकमल । वही आदिवासियों का घोटुल संगीत ।

जैसे–जैसे श्रीमंत अपने–आपको पेरिन से काटता चला गया, वैसे–वैसे सब छूटता, पिघलता, ओझल होता हुआ चला गया । पेरिन और श्रीमंत दोनों का सारा अंतर ही मिट गया । दोनों एक ही मैटर । एक ही वस्तु । एक षक्ति । एक ...

श्रीमंत फिर अपने निजी अतीत की ओर काटता हुआ चला । वर्तमान श्रीमंत । बच्चा श्रीमंत । मां के गर्भ में । उससे पहले ? पिता के रक्त में । मां के रक्त में । उससे पहले कहां ? उसी षून्य में । उसी विराट षक्ति में, जो आंखों से, षब्द से, चेतना से परे है ।

उसने पाया श्रीमंत और पेरिन – श्री और पेरीन दोनों एक हैं । एक ही के दो रूप हैं । दोनों रूप एक षून्य है । एक ही चेतना है । एक जोषी है, एक षाह है, एक पुरूष है, एक स्त्री है – यह सारा स्वरूप बनावटी है । नकली है । झूठा है । दोनों एक ही सत्य है ।

इस तरह श्रीमंत पर्सनल से इम्पर्सनल, आत्म से परात्म होता चला गया, और अंत में उसने वह सत्य पाया जो आष्चर्यजनक था । वहां वह कुछ भी न था, जहां से संघर्ष षुरू होता है । अंतर पैदा होता है ।

उसने पाया । वह अज्ञान बिन्दु है जहां से भेद पैदा होता है । भेद से भय । भय से ही व्यक्ति बनता है । अपनी रक्षा के लिए सबसे काटकर जब वह अलग होता है । और सबको अलग–अलग देखने लगता है ।

श्रीमंत ने जब अपने इस विराट अनुभव को पिताजी को बताया, तब उनके पैरों के नीचे से जैसे जमीन खिसक गई । उन्हें अनुभव हुआ – पुत्र ने पिता को हरा दिया ।

पिताजी और पेरिन के पापा घंटों बैठे बातें करते रह जाते । उन्हें अब कुछ भी समझ में नहीं आता, वे क्या कहें उनसे और ऐसा क्या करें कि दोनों का पागलपन मिट जाए ।

हां, अभी तक उनके लिए, सबके लिए वह पागलपन ही था । क्योंकि वे दोनों षादी करने को तैयार नहीं थे और न कोई और समझौता चाहते थे । वे अपने पागलपन की सारी कीमत चुकाने को तैयार थे ।

पिताजी ने कहा – इस घर से निकल जाओ । घर और कंपनी से एक पैसा भी नहीं लो । फिर कुछ करके दिखाओ तब पता चले । पहले अपने–आपको साबित करो कि कुछ हो, बिना किसी और की मदद के । बिलकुल अकेले !

श्रीमंत ने कहा – ठीक है ।

पिता ने पूछा – क्या ?

– वही जो आपने कहा ।

– मेरे कहने का मतलब मालूम है ?

श्रीमंत बोला – अब भी कुछ और कहने–सुनने की गुंजाइष है क्या ? यह कहकर श्रीमंत वहां से उठ पड़ा ।

7

श्रीमंत अपने एक दोस्त के पास गया ।

– मुझे तुरंत कोई काम चाहिए ।

दोस्त ने मुस्कराकर कहा – 'काम' की इच्छा अब भी बाकी है ?

– उसीके लिए मुझे कोई काम चाहिए ।

– पर क्यों ?

– मुझे कुछ करना है ।

– पर क्या करोगे ? देवल एंड कंपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर को कौन नौकर रखेगा ?

श्रीमंत ने और गंभीर होकर कहा – मुझे नौकरी नहीं, काम चाहिए ।

– काम माने मजदूरी !

– हां, मजदूरी ।

– क्या कहते हो ? लोग कहेंगे श्रीमंत जोषी पागल हो गया ।

– मुझे किसी और की परवाह नहीं ।

दोस्त के यहां कपड़े और गल्ले का बहुत बड़ा व्यापार था । उसके मामा थे बहुत बड़े कांट्रेक्टर ।

मामा के नाम दोस्त का खत लेकर श्रीमंत दिल्ली से बाहर जाने लगा । उसे काम चाहिए । जहां कुछ भी सोचने को न हो । वह कुछ भी कर सकता है । कुछ भी सीख सकता है ।

उस षहर में मामा जी ने एक बहुत मुष्किल ठेका ले रखा था । षहर के उत्तरी किनारे पर – जहां षहर का सारा गंदा पानी इकटठा होता था, जहां ऊंची–नीची कंकरीली–पथरीली जमीन है, जहां बांस का एक जंगल है – इस सब को पाटकर, तोड़कर एक पार्क बनाना है । गार्डन पार्क । इसके बीचोंबीच एक फव्वारा होगा ।

पिछले एक साल से वहां काम चल रहा था । पर अब तक कुछ भी, कोई भी खास काम नहीं हुआ था । अक्सर वहां स्ट्राइक, हड़ताल । 'सेठ एंड मलिक कंपनी' का बोर्ड वहां लगा हुआ था । वहीं श्रीमंत को ले जाकर मामाजी ने पूछा – क्या काम कर सकते हो ?

– जो काम मुझे सौंपा जाएगा ।

– कोई भी काम कर लोगे ?

– जी, हां ।

– यह भूल जाओगे कि तुम लखपती श्रीमंत हो ?

– उस श्रीमंत को मैं भूल चुका, अब यही समझिए ।

– अपने पिता दिवाकर जोषी को भूल जाओगे ?

– कुछ अब भी बाकी है क्या ?

– पर यह कैसे मुमकिन है ?

श्रीमंत ने कहा – मुझमें सीखने की ताकत है । मैं ईमानदार हूं ।

– केवल ईमानदारी से कुछ नहीं होता ।

– होता है, उसीसे सब कुछ होता है ।

– तुम्हारी तन्ख्वाह ?

– मेरी तन्ख्वाह मेरा काम होगा ।

– भावुकता से काम नहीं होता ।

श्रीमंत ने कहा – मजदूर भावुक नहीं होता । वह ईमानदार होता है। संपूर्ण काम ऐसे घूमता था जैसे वह कोई स्वप्न हो । उसने अपने ही ढंग से उस पूरे काम की योजना तैयार की । विषाल पार्क और गार्डन को, उसके पूरे विस्तार को और गहराई में जाकर देखा । कागज पर उतारा । मालिक ने उसे देखकर महसूस किया – श्रीमंत क्या है ? मजदूर है या इंजीनियर या आर्ट डिजाइनर ! या आर्किटैक्ट या ·· !

सारा काम श्रीमंत की योजना से चलने लगा । बिलकुल नये सिरे से सारा काम ष्षुरू हुआ । सबसे पहले जरूरी था – षहर के उस गंदे पानी को वहां से कोई रास्ता देना ।

एक नहर निकलेगी इधर से और वहां दूर सूखी झील में मिलाई जाएगी । नहर ऊपर से ढकी होगी । झील में षहर का सारा गंदा पानी जमा कर दिया जाएगा । उससे खाद बनती जाएगी ।

मजदूरों के एक दल को नहर खोदने और बनाने में लगाया, दूसरा दल जमीन को सममतल करने में, तीसरा दल बांस का जंगल काटने में । एक ओर 'बुलडोजर' तो दूसरी ओर मषीन । पर मैदान के बीच–बीच में छोटी–छोटी पहाड़ियों को

काट–काटकर उन्हें एक रूप देना, तराषकर एक स्वरूप देना, उनके बीच जगहें काटकर उनमें मिटटी भरकर धरती उगाना – यह काम श्रीमंत स्वयं अपने हाथों से कर रहा था – मजदूरों के साथ ।

गरमी के दिन । सुबह से ही गर्म हवा चलने लगी । श्रीमंत के हाथों में कभी छेनी होती, कभी हथौड़ा, कभी पत्थर काटने की रेती । कभी वह 'डायनामाइट' जगाकर पत्थर को तोड़ता होता । एक ओर से बुलडोजर की आवाज आती । दूसरी ओर गिरते हुए बांस के पेड़ों में चटकने और फटने की आवाज होती ।

वे सारी आवाजें मिलकर पसीने से तरबतर श्रीमंत के कानों में नहीं टकरातीं – उसके पूरे षरीर को छूतीं । उन आवाजों के साथ गरम हवा के झोंके जब उसकी कनपटी पर, माथे और गाल पर टकराते तो उसे लगता, वह खुद उनसे तराषा जा रहा है । हवा से, आंधी से, तूफान और बारिष से ये पत्थर तराषे जाते हैं । सूरज की गर्म हवा इनके भीतर नहीं जाती । इन्हें हिला भी नहीं पाती । पर श्रीमंत उन कटावदार पत्थरों को हिलाता, अपने हाथों से उन्हें महसूस करता ।

ये पत्थर नंगे हैं । यह झुलसी हुई जमीन नंगी हैं । श्रीमंत का मुख, दोनों हाथ, छाती, पांव सब नंगे हैं । बदन पर खाकी हाफपैंट और कुछ भी नहीं ।

काम करते हुए बदन से जो कुछ भी टकराता – हवा, मिट्टी, पत्थर के टुकड़े, गर्म झोंके – उसे लगता वह पेरिन के बदन को छू रहा है। उसके एक–एक अंग का उतार–चढ़ाव, गराई, ऊंचाई, गोलाई – सब उसे छू रहे हैं ।

वह काम नहीं करता बल्कि मानों उन पत्थरों,मिटटी और कंकड़ों से युद्ध करता है। ष्याम होते–होते वह इतना थक जाता कि जैसे सब कुछ खाली और षून्य हो गया है । ठीक वही षून्य, वही रिक्तता, जैसा पेरिन के साथ होता था ।

वह चाहता – उस षून्य को, उस खालीपन और थकान की बेहोषी को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ ले । जैसे उसकी मुट्ठियां पत्थर तोड़ने और काटने की मषीन और औजार पकड़ती हैं ।

एक दिन पीले रंग की एक लम्बी कार दिखाई दी । उसके पीछे ठेकेदार की गाड़ी। श्रीमंत के पास एक मजदूर दौड़ा आया – देखो–देखो, वही है राजकुमारी । यह सब कुछ उसके पिता का राज था । अपने पिता की इकलौती बेठी । उसी राजा की याद में यह यादगार बनवा रही है ।

श्रीमंत ने सिर उठाकर देखा, फिर अपने काम पर लग गया । अपने सिर पर छाता ताने, आंखों पर चष्मा लगाये, कांट्रेक्टर के साथ राजकुमारी उस जगह आकर खड़ी हो गई जहां श्रीमंत दोनों हाथों से बिजली के उस औजार को पकड़े हुए और उसपर अपनी छाती के पूरे बल से पत्थर के भीतर सुराख कर रहा था – डायनामाइट लगाने के लिए ।

राजकुमारी एकटक श्रीमंत को देख रही थी – काम करते हुए । इस तरह अब तक किसी पुरूष को कभी नहीं देखा था । काम करते हुए षरीर इतना सुन्दर हो जाता है, इतना मोहक हो सकता है – इसे कभी सोचा तक न था । कांट्रेक्टर ने कहा – राजकुमारी जी, अब यहां से दूर हट चलें, अब यह 'डायनामाइट' लगा रहा है ।

राजकुमारी बोली – क्या उसे खतरा नहीं है ?

– है, पर वह निडर है ।

राजकुमारी ने कहा – आप जाइए, मैं देखूंगी । अचानक विस्फोट हुआ। पत्थर बीचोंबीच से इस तरह टूटा, जैसे किसी ने चाकू से काटा हो । पत्थर की धूल के नीचे श्रीमंत खो गया था । वह जलते हुए पत्थर पर पेट के बल पड़ा था ।

धूल के षांत होते ही वह उठा और टूटे हुए पत्थर की सतह को दोनों हाथों से छूने लगा ।

राजकुमारी को आज पहली बार महसूस हुआ – पत्थर जब टूटता है तब उसके भीतर से कितनी आग बाहर निकलती है ।

राजकुमारी का वहां खड़ा रह सकना संभव नहीं हो रहा था, पर वह अपने–आपसे लड़ती हुई पूछ रही थी – वह वहां कैसे खड़ा है ? क्या छू रहा है उन पत्थरों पर ?

उसके पास जाकर राजकुमारी ने कहा – क्या आप आज षाम को मेरे यहां आ सकते हैं ?

श्रीमंत के दोनों हाथ पत्थर पर रूक गये । उसके हाथ जलने लगे ।

– मेरी ओर देखिए ।

श्रीमंत ने घूमकर देखा । राजकुमार कांप गई । उसके मुंह पर, हाथ में, सीने पर फफोले पड़े थे । कई जगह खून चमक रहा था ।

षाम होते ही राजकुमारी फिर वहां आकर श्रीमंत को ढूंढने लगी । चारों ओर अजब सन्नाटा छाया हुआ था । सारे मजदूर चले गये थे । दूर झोंपड़ियों में धुंआ उठने लगा था । मजदूर खाना पका रहे थे ।

वहां ढूंढते–ढूंढते राजकुमारी ने देखा – एक जगह पहाड़ी के बीच घास पर श्रीमंत बेहोष पड़ा सो रहा है। उसके माथे पर हाथ रखकर राजकुमारी ने उसे जगाने की कोषिष की ।

अनाचक उसके मुंह से निकला – पेरीन !

राजकुमारी ने कहा – मेरा नाम चंदुमुखी है ।

श्रीमंत उठने लगा । पर लड़खड़ाकर गिरने लगा । चंद्रमुखी ने उसे अपनी बांहों से संभाल लिया ।

– चलो, मैं तुम्हें लेने आई हूं ।

– कहां जाना होगा ?

– राजमहल ।

गाड़ी में बैठाकर चंद्रमुखी उसे अपने राजमहल में ले आई । उसे स्नान करवाया, कपड़े बदलवाये, अपने पलंग पर बिठाया, और उसके मुंह को देखने लगी । वह षांत मुख । षरीर से चमकता हुआ उसका पौरूष । उसकी आंखों का तेज । ऐसा षरीर, ऐसा मुख उसने आज तक नहीं देखा था । ऐसा सौन्दर्य, जो स्थूल होकर भी सूक्ष्म है । जो छुआ नहीं जा सकता, केवल महसूस किया जा सकता है ।

जैसे वह उसे देख नहीं रही थी, उल्टे वह उसे अधिकार में लेती चली जा रही थी । उसे लग रहा था जैसे वह उसके नंगे षरीर से लिपटती जा रही हो । और उसे पहली बार लगा – जैसे राजकुमारी नहीं, स्त्री हो, केवल स्त्री । उसे अपने जीवन का एक अर्थ मिलने लगा ।

– कौन हो तुम ?

श्रीमंत ने उत्तर नहीं दिया । पहली बार आंख उठाकर राजकुमारी को देखा ।

– कौन हो तुम ?

राजकुमारी ने फिर पूछा ।

श्रीमंत ने उत्तर दिया – मैंने नहीं पूछा आप कौन हैं । पता नहीं, लोग पूछकर क्या जानने चाहते हैं ! और जानकर क्या करना चाहते हैं ! करके क्या होना और पाना चाहते हैं !

राजकुमारी उसे अपलक देखती रही । उसके षब्द उसे छूते चले जा रहे थे ।

राजभवन के उस अंतः पुर में जैसे पहली बार कोई मेहमान आया हो । हवा के सात घोड़ों के रथ पर बैठा हुआ राजकुमार ।

पलंग पर भोजन करते–करते ही वह लुढ़ककर वहीं सो गया। चंद्रमुखी उसके षरीर पर झुकी हुई उन सारे फफोलों को अपनी आंखों से छूने लगी ।

एकाएक उसे लगा – वह उसकी आंखों के सामने से दूर भागता हुआ चला जा रहा है । वह उसे छू सकती है पर पकड़ नहीं सकती । पकड़ सकती है । पर पा नहीं सकती ।

वह वहां से भागकर अपने श्रृंगार भवन में गई । सोलहों श्रृंगार करके लौटी । पैरों में घुंघरू बांधकर नाचने लगी । नाचती रही ।

श्रीमंत की जब आंख खुली तो उसने देखा राजकुमार फर्ष पर पड़ी सो गई है । धीरे से उसे उठाकर पलंग पर इस तरह लिटा दिया – जैसे मां सोये हुए षिषु को अपने अंक से उठाकर पालने पर सुलाती हो ।

श्रीमंत राजभवन से निकलकर सीधे उसी मैदान में आ खड़ा हुआ । बीतती हुई रात के आकाष को निहारने लगा ।

चारों ओर वही पेरीन ।

वही पेरीन ।

मैदान के उस षून्य को वह अपनी बांहों से छूने लगा । बढ़ता हुआ उन टूट हुए पत्थरों के बीच घूमने लगा । पत्थरों के सिरे इतने कटीले पर इतने कोमल लगते थे, जैसे पेरीन के उरोज । बीच में आरपार कटा हुआ वह पत्थर और उस पर फिसलती हुई हथेलियां, जैसे पेरीन की कसी हुई सुडौल जांघ, पीठ, स्तन और नितंब को छूकर देख रही हों । हथेलियां जैसे हाथ में नहीं आंखों में हैं । आंखे जैसे उंगलियां हो गई हों । और जैसे सब कुछ उसी स्पर्ष में आ गया है ।

श्रीमंत के सामने – महाबलीपुरम के मंदिर के खंडहरों में जैसे सुबह हो रही है । सारे प्राचीन मंदिर अंधेरे से बाहर उगते चले जा रहे हैं । 'सिलहुट' का एक जादुई नगर । सारी सृष्टि भैरवी का संगीत हो गया है । उस संगीत में केरल का वह समुद्रतट जैसे डूबता चला जा रहा है ।

8

उस दिन आषाढ़ की पहली वर्षा हुई थी । नहर का काम उसी दिन पूरा हुआ था । इधर पार्क का स्वरूप तैयार हो गया था । श्रीमंत पार्क की सीमा से बाहर एक पहाड़ी पर खड़ा होकर समूचे पार्क को देख रहा है । जैसे वह पार्क उपवन नहीं कोई जीवित प्राणी हो ।

पुरूष ।

बांस के जंगल का मैदान अब बिलकुल साफ–सुथरा होकर गोलाकार पार्क हो गया था । यह जैसे माथा, मुख, सिर है। बीच में से जोड़ती है एक छोटी–सी हरी घाटी – यही कंठ है । फिर है पार्क का असली विस्तार –– दायें–बायें लंबे हाथ फैले हैं । बीच–बीच में गिरती–उठती हुई पहाड़ियां, गोलाकार टीले, इधर–उधर झीलें – जैसे उभरे हुए पुरूषवक्ष, बांहें, कमर, नाभि । फिर जांघें ···

श्रीमंत वहां खड़े–खड़े देख रहा है – छोटी–छोटी झीलें – एक कमर के भाग में, दूसरी नाभि के, तीसरी हृदयभाग में, चौथी कंठ में, और पांचवीं सिर में ।

अभी झीलों का महज स्वरूप तैयार हुआ है । ये झीलें जब पानी से भरेंगी और उनमें जब कमल खिलेंगे तब सारी सृष्टि पूरी होगी । इसका श्रृंगार उस दिन होगा जब पूरे पार्क में, पहाड़ियों के अंक में हरी घास होगी, फूल–पौधों से सब भरा होगा ।

पर श्रृंगार उस दिन पूरा होगा जिस दिन पुरूष–अंक में वह फव्वारा खड़ा होगा ।

फव्वारा ।

स्त्री ।

कांट्रेक्टर ने राजकुमारी को पार्क दिखाते हुए बड़े गर्व से कहा – देखिए, जैसे कोई पुरूष कालसागर के षून्य में लेटा हो ।

राजकुमारी आष्चर्यचकित थी । वह अपनी आंखों में एक दूसरा विस्मय देखने लगी थी । यह पुरूष कौन है ?

पिताश्री ?

जिनकी याद में यह पार्क–उपवन बना है, या वह पुरूष ··· श्रीमंत ?

जिसका कोई परिचय नहीं है । राजकुमारी बेहद प्रसन्न थी । चंद्रमुखी बेहद दुखी थी । राजकुमारी को अभिमान था । चंद्रमुखी अपमान से चली जा रही थी ।

बरसात के दिन बीत चुके थे । फव्वारा बनकर अब तैयार हो रहा था । पार्क की धरती घास से बिलकुल हरी–भरी हो गई थी । झीलों में पानी भर आया था । श्रीमंत ने उनमें कमल लगा दिए थे । फव्वारा पार्क के अंक में तैयार हो रहा है ।

बहुत बड़ा फव्वारा है । सरोवर में संगमरमर के कमल बनाए गए हैं । बीच में लाल पत्थर का असंख्य पंखुड़ियों वाला विषाल कमल । उसीके पीले पराग में से एक अनन्य सुंदरी की मूर्ति सजीव हो रही है । उसके भीतर जितने कमल हैं – सब दिखेंगे और उन्हीं की पंखुड़ियों से जल फूटेंगे ।

लगता है, राजकुमारी ने अपनी वह आजादी खो दी है, जिसके लिए अब तक वह राजमहल के इतने नौकर–चाकर, धन–दौलत के बीच अकेली रही है । श्रीमंत को सोचते ही, खासकर उसे काम करते हुए देखकर, वह दर्द से भर जाती । बहुत कठोर था वह दर्द। पर बहुत मोहक था, क्योंकि वह दर्द उसी पुरूष की ओर आ रहा था, जिसका नाम श्रीमंत है । वह दर्द अनोखा था । वह दर्द अजब संतोष दे रहा था ।

पिछले कई दिनों से राजकुमारी ने उसे अपने घर बुलाया था, पर वह नहीं गया था । दिन–रात फव्वारे के निर्माण में लगा रहा था ।

विवष होकर एक दिन राजकुमारी आई । उसकी काम करती हुई उंगलियां, उसका अपने ही काम में इस कदर डूबे रहना, उसका पता हुआ षरीर, उसकी एक–एक मांसपेषी चंद्रमुखी को पागल बनाने लगी ।

उससे रहा नहीं गया । श्रीमंत के पास जाकर कहा – हेलो !

उसने भी कहा – हेलो !

– इतने कठोर हो, मुझे पता नहीं था ।

– आप इतना कठोर क्यों होना चाहती हैं ?

– तुम्हें प्यार करती हूं ।

यह कहकर राजकुमारी ने मुंह फेर लिया । बड़ी तेजी से चलने लगी । दूसरी ओर। जो कभी नहीं कहना था, वह कह देना पड़ा । जो रहस्य था, वह टूट गया एक षब्द के झोंके से । जो एक जाना–अनजाना समझौता था – कोमल डोर थी जो, वह जैसे खिंचकर तार–तार हो गई । उसे दुःख हुआ और षांति मिल गई । उसे अपमान लगा, पर आनन्द से भर गई । वह उदास हो गई । डर गई । पर उसे लगा आज वह पूर्ण स्त्री हो गई ।

षाम को श्रीमंत पैदल चलकर राजकुमारी के पास गया । उसी मैले–कुचैले कपड़ों में, थकान से चूर उसी षरीर में ।

चंद्रमुखी उसे देखते ही जैसे बेसुध हो गई । दौड़कर उसे बांहों में कस लिया । उसके सीने में मुंह गाड़कर बोली – पता है, तुम मुझे नहीं चाहते ।

– ऐसा क्यों कहा आपने ?

– क्या ?

– जो नहीं कहना था ।

– तुमने मजबूर किया ।

– क्या हम उसे नहीं जानते थे ?

चंद्रमुखी ने सिर उठाकर श्रीमंत को देखा । उसके सिर की धूल–मिटटी उसके मुख पर बरस गई थी । श्रीमंत ने उसकी जलती हुई आंखें चूम लीं ।

माथा चूमने लगा ।

वह कांपती हुइ बोली – मुझे चूमो । मुझे । ओंठ मेरे···

वह फिर बोली ।

– कौन हो तुम ?

– क्यों पूछती हो ?

– अच्छा, यह बताओ, फव्वारे की वह सुंदरी कौन है ?

– क्या तुम नहीं हो सकती ?

– नहीं । नहीं । नहीं ।

चंद्रमुखी फफककर रो पड़ी । श्रीमंत ने कहा – मैं जा रहा हूं ।

राजकुमारी तड़प उठी – नहीं जा सकते ।

श्रीमंत ने देखा : राजकुमारी का जैसे सारा मुंह लाल हो गया है ।

– बेरहम । मैंने तुझे देखा है । मैंने देखा है तुझे काम करते हुए । काम करती हुई तेरी उंगलियां ऐसे चलती हैं जैसे वह काम नहीं, किसी स्त्री का षरीर हो । मैं नहीं । कोई और ···

राजकुमारी गुस्से से चीख पड़ी । दो नौकर दौड़े हुए आए ।

– मारो । बेहोष कर दो उस बत्तमीज को ।

दोनों ओर चाबुकों से वह बेतरह पिटने लगा । उसे दर्द का नषा होने लगा । केरल के उस समुद्र में वह खड़ा है । चारों ओर से ज्वार की लहरें उसे मार रही हैं । उसके षरीर से टकरा रही हैं ।

पेरीन बांहों में है ।

दोनों बेसुध होते जा रहे हैं । समुद्र बिलकुल तूफानी हो गया है । दिखेगा । पर वह उसी तरह काम पर लगा था । जैसे वह काम उसका अपना, निजी हो, काम नहीं साधना हो, साधना नहीं आनन्द हो ।

पार्क सजकर तैयार हो गया । फव्वारा सम्पूण हो गया । फूल–पौधों से उपवन भर गया है । पहाड़ियों के भीतर से फूल–पत्ते निकल आए हैं । झीलों में कमल के फूल आ गए हैं ।

श्रीमंत विषाल पार्क के चारों ओर घूमकर पहरा देता है । चौकीदार और मालियों को सख्त हिदायत है – बिना मेरी इजाजत के कोई भी पार्क में नहीं घुस सकता, इस घास पर चलकर कोई इसे गंदा नहीं कर सकता ।

एक दिन राजकुमारी चंद्रमुखी पार्क में आने को हुई, श्रीमंत ने मना कर दिया – जब मैं कहूंगा, तभी कोई इस पार्क में घुस सकता है, इस घास पर चल सकता है ।

राजकुमारी ने पूछा – तुम कौन हो ऐसा कहने वाले ?

उसने उत्तर दिया – आपका प्रेमी ।

– सच, तुम मेरे प्रेमी हो ?

– जब आपको विष्वास नहीं है तो प्रेम का नाम क्यों लेती हो ?

– विष्वास क्यों नहीं है ?

– अंहकार जो है – रूप का, धन का, षक्ति का, अपने राजपरिवार का !

श्रीमंत ने उसे चुप कर दिया ।

उसी रात श्रीमंत षहर में घूमने गया । घूमते–घूमते एक होटल के सामने उसके पैर रूक गए । भीतर से किसी के गाने की आवाज आ रही थी ।

वह अंदर गया । लोगों की भीड़ थी हाल में । मंच पर माइक के पीछे वही पेरिन खड़ी गा रही थी । उसकी आंखें मुंदी थीं । श्रीमंत दीवार के सहारे खड़ा हो गया । उसके पैर कांपने लगे । आंखों के सामने जैसे कोई तेज प्रकाष छाता चला जा रहा हो ।

संगीत जैसे ही सम पर आकर टूटा, उसके मुंह से निकला – पेरीन !

श्रीमंत उसके सामने खड़ा था । दोनों एकटक निहारने लगे। जैसे आंखों से एक–दूसरे को स्पर्ष करने लगे हों ।

सबसे आंख बचाकर दोनों बाहर निकल आए । सड़क पर । सड़क से भागते हुए दोनों उसी मैदान के पास आ गए ।

पूरे चांद की रात थी वह ।

श्रीमंत ने कहा – आओ । इस पार्क की घास पर तुम चलो । सिर्फ तुम्हारे कदमों के लिए मैंने बनाया है ।

– आओ साथ चलें ।

– नहीं, तुम अकेली घूमो । मैं तुम्हें चलते हुए देखूंगा ।

पेरीन नंगे पांव उस घास पर चलने लगी । पीछे–पीछे, उसे निहारता हुआ श्रीमंत चलने लगा । चांदनी में संगीत घुलने लगा । सारा पार्क संजीव हो गया । पेरीन ने एक नजर में देख लिया, सारा पार्क श्रीमंत है । पार्क पुरूष है । पार्क की सारी प्रकृति पेरीन है। वह फव्वारा सौन्दर्य है । आदि सौन्दर्य । आदिम सौन्दर्य । षुद्ध रोमांस ।

फव्वारा चल पड़ा । कमलों से जल की धारा फूट पड़ी । दोनों के माथों पर चांदनी से सराबोर जल बरसता रहा ।

सुबह होने लगी ।

झील के कमल मुंह खोलने लगे – आने वाले सूरज के प्रकाष के लिए । सूरज की पहली किरण में दोनों नहाकर, झीलों में खिलते हुए कमलों को देखने लगे ।

– पेरीन ! इस घास पर चलो । घास के हर तृण में तुम्हारे पैरों का संगीत समा जाए । मैंने तुम्हारी आहट को इस जमीन में बो रखा है ।

पेरीन पार्क में घूम रही है । श्रीमंत उसे चलते हुए देख रहा है । उसका हर कदम जैसे एक यात्रा है, जो श्रीमंत के भीतर पूरी हो रही है।

दूर खड़ी राजकुमारी चंद्रमुखी वह सारी लीला अपनी आंखों से देख रही है । उसकी आंखों में आंसू बरस रहे हैं । उसकी आंखें मुंद गई हैं ।

और जब आंखें खुलीं, तो वहां कोई नहीं था । दोनों ने जाने कहां चले गए थे ।

उसी तरह पेरिन को भी अपने पिता के घर से निकलना पड़ा था । वह सब कुछ वही छोड़कर अकेली निकली थी । इधर–उधर उसने काम ढूंढे । उसे 'रिसेप्षनिस्ट' के अलावा और कोई नौकरी नहीं मिल रही थी । पर वह ऐसी नौकरी नहीं करना चाहती थी । अंत में जब उसे कोई काम नहीं मिल सका, तब उसे दूर इस षहर में संगीत और नृत्य टीचर का काम लेना पड़ा था । उसके नाते–रिष्तेदारों ने, उसे जरा भी जानने वालों ने उसकी इतनी बदनामी कर रक्खी थी कि उसका जीना दूभर हो गया था ।

इन दो सालों में कई बार ऐसे भी वक्त आए थे, जब लोग खींचकर उसे कोठे पर बैठा देना चाहते थे । पर वह उसी रोषनी के सहारे सबसे लड़ी है, जिसका नाम पेरीन है । जो श्रीमंत है ।

पेरिन हर सांस में श्रीमंत को जीती है । हर नृत्य और संगीत में उसीको ढूंढती है।

वह अचानक भेंट, उसी खामोष तलाष का फल थी । दोनों मिले । और फिर बिछुड़ गए । पेरिन ने अखबारों में पढ़ा – श्रीमंत के हाथों बनाए हुए राजकुमारी के उस पार्क, उपवन और फव्वारे के बारे में । किसी बड़े मंत्री ने उसका उद्घाटन किया था । गवर्नर के हाथों उस फव्वारे का बटन दबाया गया था ।

श्रीमंत को दूसरी जगह, एक बड़ी फर्म में नौकरी मिल गयी । तीन हजार तनख्वाह थी । रहने को बंगला मिला था, कंपनी की ओर से । तब दिल्ली से माता–पिता दौड़े हुए आए थे ।

पिताजी बहुत खुष थे – देखो न ईष्वर की मेहरबानी ! सारा चक्कर किस तरह खत्म हो गया । तभी तो इतनी बड़ी नौकरी मिली । वरना उस बदनामी ने हमें अब तक मिटा दिया होता । अब चलो अपने घर । कंपनी के काम संभालो ।

मां बोली – चल मेरे साथ अपने घर ।

श्रीमंत चुप था । मां और पिताजी की ऊंची–ऊंची बातें उसे चोट पहुंचा रही थीं । पता नहीं, अपनों से कितना–कितना सहना पड़ता है ।

पिताजी ने कहा – बेटा, तू चुप क्यों है ? कुछ बोलता क्यों नहीं ?

मां बोली – अब तू जो कहे, हम करने को तैयार हैं ।

– अच्छा हुआ आफत टली ।

– कहां से गले आ पड़ी थी वह ।

श्रीमंत उनके सामने से चुपचाप हटने लगा । दोनों ने रोका – क्या बात है बेटा, तू कुछ बोलता क्यों नहीं ?

श्रीमंत ने गम्भीर स्वर में कहा – हम किससे क्या बात करें ! मां की भाषा स्वार्थ की है पिता की भाषा अंहकार की । और मेरे पास अब कोई भाषा नहीं है । जो भी वह कहीं घुलकर बह गयी । आप लोग बुद्धि से सोचते हैं, तर्क से बातें करते हैं । मैं अब सोचता नहीं । विष्वास करता हूं । मेरे पास बुद्धि नहीं, चेतना है । तर्क नहीं, मौन है । मैं सोचता नहीं, अनुभव करता हूं । कहता नहीं, वही जीना चाहता हूं ।

एकाध हफ्ते वहां रहकर, बेटे का सारा रंग–ढंग, व्यवहार–विष्वास देखकर मां के साथ पिताजी दिल्ली लौटने लगे । उन्होंने अनुभव किया, श्रीमंत अपने काम के अलावा और कुछ नहीं सोचता । कहीं आता–जाता नहीं । षहर के अफसरों, धनी लोगों के बीच उसकी बड़ी इज्जत है । उसकी ईमानदारी और चरित्र के सभी प्रषंसक हैं ।

मां ने कहा – अब मैं अपने बेटे को यहां अकेला नहीं छोडूंगी ।

और दोनों को एक साथ वहीं छोड़कर पिताजी अकेले दिल्ली लौट आए ।

एक ही साल के भीतर श्रीमंत के काम से प्रसन्न होकर कंपनी के मालिक ने उसे जनरल मैंनेजर बनाकर दिल्ली बुलाना चाहा । उसने मना कर दिया । उसे काम प्रिय है। फल के बारे में अब वह नहीं सोचता । उसके चरित्र में अंहकार नहीं है । उसके व्यवहार में कहीं कोई चोट नहीं है । वह बेहद मेहनती है । पर जरा भी महत्त्वाकांक्षी नहीं है ।

कंपनी के और अफसरों ने जानना चाहा कि वह तरक्की पर क्यों नहीं गया ? उसने बताया – बड़े षहरों ने और षहरों की नौकरी और जिंदगी ने हमारे आनन्द को लूट लिया है । यह हमसे काम लेती है, पर काम के आनन्द से हमें काट रखती है । यह हमारी तरक्की, लाभ–हानि की चिंता अपने हाथों में लेकर हमें मनुष्य नहीं रहने देती । षहर हमें बहुत देता है, पर हमारे पास अपना कुछ नहीं होता । अपनी हंसी, अपने निजी आंसू तक नहीं ।

उस दिन बहुत तेज बारिष हो रही थी । सुबह का समय था । श्रीमंत के कमरे में वही पीली गाड़ी आकर खड़ी हो गई ।

राजकुमारी चंद्रमुखी ।

श्रीमंत के मुंह से निकला – आप यहां !

– हां, मैं यहां । रात–भर अकेली गाड़ी चलाती रही हूं ।

– आराम कीजिए । बहुत थक गई हैं ।

चंद्रमुखी ने कहा – तुम जानते हो थकान किसे कहते हैं !

– हां, जानता हूं ।

श्रीमंत ने राजकुमारी का परिचय मां को दिया । मां गद्‌गद हो गयीं । हाय ! इसीसे मेरे बेटे की षादी हो जाए । मेरा बेटा राजा कहलाएगा । राज करेगा इसे अपनी रानी बनाकर ।

मां ने चुपचाप दिल्ली टेलीफोन कर दिया ।

संध्या समय माताजी पूजाघर में गयीं । चंद्रमुखी ने श्रीमंत के सामने खड़े होकर कहा – तुम्हें तो पूरी प्रकृति से इतना प्रेम है, मैं क्या उस प्रकृति में नहीं हूं ?

श्रीमंत बोला – पर आप तो नफरत करती हैं ।

– हां, मैं हर चीज को प्यार नहीं कर सकती । प्यार के लिए नफरत जरूरी है । जो हर चीज को प्यार करता है, वह दरअसल हर चीज से नफरत करता है ।

दोनों के बीच सन्नाटा छा गया ।

चंद्रमुखी ने ही पूछा – वह लड़की कौन थी ?

– पता नहीं ।

– क्या कहते हो ?

– विष्वास कीजिए, हम दोनों बिलकुल परिचित नहीं हैं ।

फिर वही खामोषी छा गयी ।

चंद्रमुखी ने फिर पूछा – उस तरह तुम मुझे अकेली छोड़कर क्यों भागे ?

श्रीमंत चुप था ।

– मेरा सब कुछ तुम्हारा है ।

– नहीं ।

चंद्रमुखी ने श्रीमंत के कंधे पर हाथ रख दिया – तुमने नफरत के बीच प्यार क्यों किया ? मैं इतने दिनों तक अकेली थी, तुमने मेरे अकेलेपन को तोड़ा क्यों ? मैं अपने अंहकार के साथ सारी जिन्दगी काट देती, तूने उसे चूर–चूर क्यों कर दिया ?

श्रीमंत बोला – चाहती हो, मैं क्षमा मांगू ?

– जब मैं क्षमा मांगने नहीं आयी ...

– पर आपको तो अकेले रहने की आदत है ।

– आदत थी तुम्हारे आने से पहले । अब मैं अकेली नहीं रह सकती । और सबके साथ नहीं रह सकती ।

यह कहती हुई चंद्रमुखी के कांपते हुए दोनों हाथ उसके कंधे से नीचे खिसकने लगे । हथेलियां उसके चट्टान जैसे वक्षस्थल पर घूम–घूमकर दबाव डालने लगीं । उन उंगलियों में इतना वजन आ सकता है, इसे कोई नहीं जानता ।

श्रीमंत उसकी उंगलियां पकड़े खड़ा हो गया । अनजाने उसके कदम अपने कमरे की ओर बढ़ने लगे ।

वे चुप थे । चुपचाप चल रहे थे । उसके पैरों की आहट से सन्नाटा और गहरा होता जा रहा था।

कमरे में रोषनी नहीं थी । श्रीमंत 'लाइट आन' करने चला । चंद्रमुखी ने उसका हाथ खींच लिया। श्रीमंत लम्बी खिड़की पर पड़े मोटे पर्दे को हटाने लगा । बाहर बारिष हो रही थी । बारिष का अंधियारा कमरे–भर में फैल गया ।

बारिष के अंधियारे में एक अजीब रोषनी होती है, वही रोषनी छायी थी वहां ।

दोनों कमरे के बीचोंबीच खड़े थे – बिलकुल आमने–सामने । षांत गम्भीर । जैसे किसी पूजा के क्षणों में हों । कमर में हाथ डालकर दोनों एक–दूसरे को बांधने लगे । धीरे–धीरे जांघों पर कमर का दबाव पड़ने लगा । अब वही दबाव असंख्य गुना बढ़ता हुआ ऊपर बढ़ने लगा । कमर से पेट पर । पेट से वक्ष पर । फिर जलते हुए होंठों पर जैसे सारा दबाव टूट पड़ा ।

वे उसी तरह कटकर गिरते हुए वृक्ष की तरह पलंग पर गिर गए चंद्रमुखी उसके मुंह को छूती हुई, उसे देखकर मुस्करा रही थी ।

– श्रीमंत तुम कितने सुन्दर हो ! तुम्हारी यह पकड़, यह कसाब, आह !

श्रीमंत चुप था । जैसे वह उस क्षण से परे कहीं कुछ और अनुभव कर रहा था । चंद्रमुखी ने उसे अंक में झकझोरते हुए कहा – नहीं, नहीं । मैं तुम्हें और कुछ नहीं सोचने दूंगी । कुछ नहीं । कुछ भी नहीं।

श्रीमंत अब उसकी नाचती हुई उंगलियों को अपने नंगे षरीर पर महसूस करने लगा । वह अपने दांतों से उसके वक्ष को काटने लगी । जैसे वह उस चट्टान को काटकर, उसे बेधकर उसके रहस्यलोक के भीतर प्रवेष कर लेना चाहती हो ।

श्रीमंत अपने और उसके जलते हुए गरम षरीर से जैसे खौलते हुए पानी की आवाज सुनने लगा । सारी नसों में कुछ बजने लगा था । दोनों एक–दूसरे के कसाव में अजब–सी कंपन महसूस कर रहे थे । अब दोनों का अपना कोई नाम नहीं रह गया था।

दोनों का 'था' मिट गया था ।

केवल 'हे' रह गया था।

आह भरते हुए चंद्रमुखी ने कहा – मैंने तुम्हारा भोग किया है । लो, अब तुम मेरा भोग करो । मैंने तुम्हारा स्वाद चखा, अब मेरा स्वाद लो ।

– मेरा तुम । मेरा मैं ।

– तुम्हारा तुम ।

– हमारा मैं ··· हम ··· ह ··· म ···

उसने कहा – उठो । बाहर देखो ।

वह उसे निहारने लगी । उसके अलावा और क्या है इस सृष्टि में !

जो भीतर है, वह बाहर कहां है ? सारा बाहर इसी भीतर की लीला है । उसीकी आहट है । उसीकी प्रतिध्वनि है ।

वे दोनों चुप थे । बाहर बारिष और तेज हो गयी थी । हवा बहने लगी थी । पानी के थपेड़ों की आवाज उनके षरीर को छू रही थी ।

श्रीमंत ने बढकर सिरहाने का लैम्प जला दिया । परे कमरे में धीमे प्रकाष का जादू फैल गया । वह मुस्कराई – सच, तुम बहादुर हो ।

दोनों उस जादुई रोषनी में एक–दूसरे को देखते रहे । कोई किसी को हाथों से नहीं छू रहा था । केवल आंखों से । आंखों के नयनों से ।

वह उसकी ओर देखकर उसी तरह पलंग से उठकर उस जगह खड़ी होकर उसे निहारने लगी, जहां पहली बार दोनों आमने–सामने खड़े हुए थे ।

वह उसकी ओर नहीं, उसके किनारे खिड़की से बाहर अंधेरे में न जाने क्या देख रहा था।

वह बोली – क्या देख रहे हो ?

वह चिल्लाया – पेरीन !

वह दौड़ी । उसे बांहों में भींच लिया।

– क्या देख रहे हो ?

– कुछ नहीं ।

– झूठ बोलते हो ?

– हां, झूठा हूं । पागल हूं ।

चंद्रमुखी अपने दोनों स्तनों को हाथों से ढककर बाहर अंधेरे में देखने लगी । उंगलियों के बीच उसका स्तन अब फिर धीरे–धीरे कठोर होने लगा था । वह अपनी जांघों को कसकर वहीं फर्ष पर बैठ गई ।

अचानक उसे महसूस हुआ, श्रीमंत उसे पीछे से कसकर उठा रहा है । जैसे बर्फ पिघलने लगती है, वैसे ही उसके भीतर कुछ पिघलने लगा । फर्ष कितना ठंडा था !

श्रीमंत ने कहा – मुझे मत छुओ । मुझे छूने दो ।

जैसे वह उसकी परछाईं बनती चली जा रही हो । वह उसे अपने एक–एक अंग से महसूस करने लगा । वह उसे जीने लगा ।

पता नहीं वे दोनों कब वहीं सो गए । दरवाजे पर दस्तक । वे जग गए । पर भागे नहीं । एक–दूसरे को उठाया । बाहर बारिष रूक गई थी । चांदनी छिटकी हुई थी।

रात के डेढ़ बज रहे थे । नौकर–चाकर सब खड़े इंतजार कर रहे थे । मां खाने की मेज पर माला जप रही थी ।

मां दोनों को इस तरह साथ देखकर प्रसन्न हो गई । जी भरकर दुआएं देने लगी।

दूसरे दिन पिताजी आ पहुंचे । श्रीमंत अपने काम पर चला गया था । पिताजी राजकुमारी को देखकर गद्‌गद हो गए । निहायत लालच से पूछा – आपको मेरा लड़का पसंद है ?

– मैं उन्हें पसन्द हूं , पहले यह पूछिए उनसे ।

– वह मेरी जिम्मेदारी है ।

मां ने कहा – श्रीमंत हमारी बात नहीं टाल सकता, उसकी पहली षादी बहुत खराब थी ।

षाम को श्रीमंत से भेंट हुई । पिताजी ने सीधे वही षादी की बात की । जैसे इसके अलावा उन्हें कुछ भी नहीं जानना था । कुछ भी और नहीं कहना था ।

जहां सब कुछ पहले से ही निष्चित है, उसे ही समाज कहते हैं । यहां रहस्य की गुंजाइष तिल–भर नहीं है । जितना अन्धकार में है, वही चरित्र है यहां, इसे समाज नहीं मानता । यहां झूठ–छल और आडम्बर को चरित्र माना जाता है ।

पिताजी ने बड़े विष्वास से पूछा – राजकुमार पसन्द है न ?

– कौन राजकुमार ?

– चंद्रमुखी ।

– ओह ! पर मैं कौन हूं किसी के बारे में इस तरह राय देने वाला ?

– राय तो देनी होगी ।

– मेरी राय की कीमत मेरे पास है ।

– नाराज मत हो । अब जो तुम चाहोगे, वही होगा ।

– तो होने दीजिए न !

– वहीं तो चाहता हूं ।

– क्या ?

– चंद्रमुखी से तुम्हारी षादी ।

– षादी क्यों चाहते हैं ?

– वही बुनियाद है ।

– किसकी ?

– सबकी ।

श्रीमंत चुप रह गया आगे कुछ न बोला । न पिता के किसी प्रष्न का जवाब दिया, न उनकी किसी बात का विरोध किया ।

रात को भोजन के बाद उनके सामने ही जब वह राजकुमार का हाथ पकड़े टहलने निकल गया, तब पिताजी को निष्चय हो गया कि षादी होगी । सुबह, वह यहां तक उदार हो गए कि चलो अगर वह षादी न भी करे तो दोनों दोस्त की ही तरह रह सकते हैं ।

अगले सप्ताह में दो दिनों की छुट्टी पड़ रही थी – होली की । चंद्रमुखी साग्रह उसे अपने घर ले जाना चाहती थी । उसने पूछा कि क्यों वह उसे ले जाना चाहती है ?

– यह वहीं बतलाऊंगी ।

– यहीं बता दो ।

– मैं चाहती हूं तुम्हें उस पार्क में टहलते हुए देखना ।

– विष्वास करो, मैं जब चाहता हूं, उस पार्क में टहलने लगता हूं ।

– पर तुम्हें टहलते हुए मैं देखना चाहती हूं ।

– जो देखना चाहता है, वह देख लेता है । जो जीना चाहता है, वह जी लेता है।

– कैसे ?

– यह कोई किसी को नहीं बता सकता । यह खुद मुझे पता नहीं था कि ऐसा भी होता है । ऐसा भी हो सकता है । ऐसा केवल था नहीं । ऐसा है । है ।

– क्या ?

श्रीमंत बड़ी देर चुप रहने के बाद बोला – तुम मुझे वहां क्यों ले जाना चाहती हो, कारण मैं जानता हूं ।

– क्या ?

– तुम मुझे वहां ले जाकर यह कहलवाना चाहती हो कि फव्वारे की वह सुन्दरी तुम हो ।

– हां, मैं तुम्हारे मुंह से यही सुनना चाहती हूं ।

श्रीमंत उसके सामने खड़े होकर बोला – सुनो । वह सुंदरी तुम्हीं हो । राजकुमारी खुषी से चीख पड़ी – हाय ! मुझे विष्वास नहीं होता ।

श्रीमंत ने कहा – मुझे पता था, तुम्हें विष्वास नहीं होगा । जहां से विष्वास होता है, उसे तुमने रौंद डाला है । जहां उसकी जगह थी, वहां कुछ और है ।

राजकुमारी चीखती रही – नहीं । नहीं । नहीं ।

वह जैसे उबल रहा था – मनुष्य की कल्पना मार दो । उसके रहस्य में आग लगा दो, सपनों को बीमार बना दो, बचपना छीन लो उससे, उसके पागलपन को जेल के सीखचों में डाल दो, उसकी नजरों में उसे ही गिरा दो ।

– चुप रहो ।

– फिर विष्वास क्यों नहीं होता ?

चंद्रमुखी की आंखों से आसूं बरसने षुरू हो गए । वह लड़ने लगी कि वह रोए नहीं । पर बांध टूट गया । वह फफककर रो पड़ी ।

काफी देर बाद वह भरे कंठ से बोली – मैं उसी विष्वास के लिए तुम्हारे पास आई हूं ।

– उसके लिए, किसी के पास जाना नहीं होता । सारी चीजें उसके पास आ जाती हैं । वह जो चाहता है, हो जाता है । उसके लिए भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों का अंतर मिट जाता है । वह अपनी जिन्दगी को जीवन से भी बड़ा मानकर, बनाकर जीने लगता है।

चंद्रमुखी बिलकुल मौन हो गई । उसके भीतर जैसे कोई चट्टान टूटी हो और भीतर कोई सोता बहने लगा हो, आसूं बनकर । उसने कहा – मैंने तुम्हारा अपने महल में अपमान किया है, मुझे क्षमा कर दो ।

– वह अपमान मुझे याद भी नहीं है ।

– फिर क्या याद है ?

– तुम याद हो ।

– एक बार मेरे संग मेरे साथ चलो ।

– कहां ?

– जहां मैं चाहती हूँ ।

श्रीमंत ने कहा – आप कभी भूल नहीं पाती कि आप राजकुमारी हैं । यह भी नहीं भूत पातीं कि आप ऐसी स्त्री हैं ।

– क्या ?

– मैं–आप क्या, किसी भी और की इच्छा से कुछ नहीं हो सकता, कुछ नहीं कर सकता ।

– तो ...

– और आगे कुछ नहीं ।

अपमानित और दुखी होकर राजकुमारी चली गई ।

श्रीमंत को अपनी गाड़ी में बैठाए चंद्रमुखी राजमहल में लौट आई । दो दिनों तक दोनों एकसाथ रहे । सुबह–षाम उसी पार्क में टहलते रहे ।

चंद्रमुखी को विष्वास हो गया कि वह सुन्दरी प्रतिमा वही है, पर वह पुरूष कौन है। इसका उत्तर कहां मिलेगा ?

9

अब श्रीमंत के साथ पेरिन को एकसंग घर में रहते हुए देखकर माता–पिता को कोई एतराज न हुआ । उन्हें प्रसन्न देखकर जैसे उन्हें भी षंति मिली ।

पेरिन ने संगीत टीचर की वहां भी नौकरी कर ली ।

एक दिन लॉन पर षाम को चाय पीते हुए पेरिन ने पूछा – कांट्रेक्टर की वह इतनी मुष्किल नौकरी और उससे भी ज्यादा मुष्किल वह पार्क बनाने और वह फव्वारा तैयार करने का काम तुमने कैसे किया ?

– पता नहीं ।

पेरिन ने फिर पूछा – तुममें इतनी ताकत कहां से आई ?

श्रीमंत उसके चेहरे को निहारकर रह गया ।

पेरिन जैसे पूछती चली जा रही थी –– तुम्हारे संस्कार पैसेवालों जैसे नहीं हैं । तुम्हारा स्वभाव मां–बाप से नहीं मिलता । मुझे तुम्हारे चरित्र से आष्चर्य होता है ।

श्रीमंत ने मुस्कराकर कहा – मैं मजदूर हूं ।

– ईमानदार मनुष्य ···

यह कहते हुए पेरिन ने श्रीमंत के दायें हाथ को पकड़ लिया । उसकी हथेली को, पांचों उंगलियों को छूती रही । उनसे खेलती रही । श्रीमंत ने उसके हाथ को अपनी गोद में रख लिया । और बिलकुल निष्चेष्ट–षांत बैठा रहा ।

षाम ढलती जा रही थी ।

सितम्बर के दिन थे ।

पेरिन ने सहसा देखा, श्रीमंत की आंखों में जैसे कुछ जलने लगा है ।

– क्या बात है ? तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ?

श्रीमंत बिलकुल चुप था ।

पेरिन परेषान होने लगी । श्रीमंत ने उसकी बायीं हथेली को अपनी दोनों हथेलियों से कस लिया और रूक–रूककर बोलने लगा – आज मैं तुम्हें एक ऐसी बात बताता हूं, जिसे मेरे अलावा और कोई नहीं जानता । मैं अपने इस मां–बाप की संतान नहीं हूं । मैं एक गरीब मजदूर पिता और मजदूरिन मां का लड़का हूं । मैं जब कुल तीन महीने का था, तभी मेरी मां एक दुर्घटना में मर गईं । कलकत्ते में इसी दिवाकर जोषी की एक बिल्डिंग बन रही थी । उसीकी तीसरी मंजिल पर मेरे मां–बाप मजदूरी के काम पर लगे थे । ईंट ढोती हुई मां के पैर ऊपर बारजे पर फिसले थे, और वह नीचे गिरकर उसी दम मर गई थी । मैं उससे कुछ ही फासले पर सोया पड़ा था । मां की चीख से डरकर मैं चिल्ला पड़ा था । और पंडित दिवाकर जोषी ने मुझे अपनी गोद में उठा लिया था ।··· तब मैं करीब छः साल का था । मेरा वह मजदूर बाप मुझे देखने आया था । जब उसने मुझे बेटा कहकर अपने गले से लगाया और वह रोने लगा तब मैंने बेहद गुस्से में, पूरी नफरत से कहा – भाग जा यहां से ! खबरदार, फिर कभी जो यहां षक्ल दिखाई । क्या तू मुझे नहीं पाल सकता था ? तूने मुझे किसी और को दे क्यों दिया ?···

यह कहते–कहते श्रीमंत फफककर रो पड़ा । भीतर जाकर पलंग पर गिरा । वहां पेरिन की आवाज सुनकर वह बाथरूम में भागा । भीतर से बंदकर वहां रोता रहा ।

पेरिन बाहर उसकी सिसकियां सुनकर घायल हो रही थी ।

काफी देर बाद नहा–धोकर श्रीमंत बाहर निकला और बिलकुल सहज स्वर में बोला – मेरे इस मां–बाप को पता नहीं है कि मैं इस रहस्य को जानता हूं । सोचता हूं, क्यों इनके दिल को तोडूं ? इन लोगों ने मेरे साथ इतना त्याग किया है । मुझे अपने से जनमे हुए पुत्र की तरह पाला है । इतना प्यार दिया है। सचमुच ये लोग मेरे लिए महान माता–पिता हैं ।

पेरिन ने पूछा – यह बात तुमने कभी अपनी पत्नी को भी नहीं बताई ?

श्रीमंत ने हंसकर कहा – तुम्हारे सिवा आज तक किसी को भी नहीं ।

– मुझे ही क्यों बताया ?

– पता नहीं, क्यों ?

उस रात श्रीमंत अपनी गहरी यादों में सोता हुआ सिसकता रहा। रात–भर पेरिन जागती रही ।

सितंबर बीत गया ।

एक दिन पेरिन ने श्रीमंत से कहा – मेरा वह पति अषोक अक्सर मुझे मारता था । वह भी किसलिए कि मैं अपने पापा से रूपये मांगकर उसे देती रहूं । मैं तरह–तरह के बहाने बनाकर हजारों रूपये पापा से मंगाती और वह ऐष में पैसे उड़ाता । मेरी इच्छा होती, मैं पूरी बात पापा को बताऊं, पर हिम्मत न होती । एक बार ऐसा हुआ कि मैं मां बनने वाली थी । अषोक ने कहा कि मैं गर्भपात करा लूं ।

मैंने पूछा – क्यों ?

उसने कहा – मुझे अभी बच्चा नहीं पसन्द है ।

पेरिन कहने लगी – तब मुझे लगा, मैं अषोक की पत्नी नहीं, रखैल हूं । इसकी प्रेमिका नहीं, मषीन हूं, पैसे देने वाली, तन देने वाली । तबसे मेरा उससे भयानक झगड़ा होना षुरू हुआ । उसी बीच मेरे गर्भ का बच्चा जाता रहा । मैंने तब अपना वह घर छोड़ दिया । मुझे पुरूष–समाज से नफरत हो गई। मैं बीमार होकर काफी दिन तक एक नर्सिंग होम में रही । वहीं एक दिन मुझे अपनी बीमारी का रहस्य पता लग गया । स्त्री अपने–आपको पुरूष से कमजोर क्यों समझती है ? क्या वह पुरूष बिना अकेली नहीं रह सकती ? और मैं बिलकुल अकेली हो गई । यहां तक कि अपने पापा से भी पृथक् । अपने सारे गहने बेचकर तलाक के लिए अषोक से मुकदमा लड़ी और मैं जीत गई । अकेली रहने लगी । स्कूल के दिनों का छोड़ा हुआ संगीत फिर से सीखने लगी ...

जाड़े के दिन षुरू हो गये थे । कंपनी से आर्डर आया कि श्रीमंत को कंपनी का मैंनेजिंग डाइरेक्टर होकर दिल्ली जाना है ।

श्रीमंत को न अपनी यह तरक्की पसंद थी, न उस छोटे षहर को छोड़कर उसे दिल्ली जाना पसंद था ।

उसने पेरिन से कहा – आखिर यह सब किसलिए ?

पेरिन बोली – अपने लिए ।

– अपना क्या होता है ?

– अपना जीवन ।

श्रीमंत ने पूछा – उससे बड़ा जीवन और क्या हो सकता है, जो हमने केरल के समुद्रतट पर जिया ? उस जंगल में आदिवासियों के बीच जो जीवन जिया ? उस गांव में···

पेरिन ने बीच में काटकर कहा – हर वक्त तो कोई उस तरह पागलों जैसी जिन्दगी नहीं जी सकता ।

– क्या ?

श्रीमंत अवाक् रह गया ।

पेरिन बोली – हम कब तक सबसे भागते रहेंगे ?

– कौन भाग रहा है ?

– तुम !

पेरिन के इस उत्तर से श्रीमंत को बड़ी चोट लगी । उसने कई दिनों तक पेरिन से बात नहीं की । पेरिन ने भी कोई कोषिष नहीं की ।

एक दिन खाने की मेज पर अचानक पेरिन के मुंह से निकला – तुम्हें राजकुमारी से प्यार है, तभी तुम इधर से नहीं हटना चाहते ।

श्रीमंत का चेहरा गुस्से से तमतमा आया । वह खाना छोड़कर उठ गया ।

उसे परिन की जिद के सामने झुक जाना पड़ा ।

वह दिल्ली आ गया ।

दिल्ली में श्रीमंत का जीवन बहुत व्यस्त हो गया । रोज सुबह आठ बजे उसे अपना बंगला छोड़ देना पड़ता, रात के नौ बजे से पहले वह घर नहीं लौट पाता ।

अक्सर कंपनी के डायरेक्टरों की मीटिंग होती । फिर किसी बड़े होटल में डिनर और तब रात के एक बज जाते ।

एक छुटट्ी के दिन पेरिन के साथ श्रीमंत अपने पिता के घर जाने लगा । तब पेरिन ने कहा – मैं वहां नहीं जाऊंगी ।

,– क्यों ?

– हफ्ते में एक दिन तो छुटट्ी होती है । मैं वहां 'बोर' होने नहीं जा सकती ।

– कहां जाना चाहोगी ?

– चलो, हवाई जहाज से बम्बई चलते हैं । वहां समुद्र है । जुहू पर किसी होटल में दिन बितायेंगे, रात को प्लेन से लौट आयेंगे । कंपनी का कोई काम दिखा देना ।

श्रीमंत पेरिन का मुंह देखता रह गया । पेरिन जाने की तैयारी करने लगी । श्रीमंत ने पास जाकर कहा – कंपनी के खर्चे से क्यों, अपने खर्चे से चलेंगे ।

पेरिन बोली – तब मैं नहीं जाती ।

श्रीमंत ने कहा – जैसे तब हम महाबलीपुरम से त्रिवेन्द्रम गए थे हवाई जहाज से, जैसे···

– तुम खामखा इतने ईमानदार बनते हो ।

दोनों एक दिन की वह छुटट्ी मनाने बंबई गए । जुहू तट से लेकर सारे होटलों तक भीड़ ही भीड़ ।

श्रीमंत ने पूछा – दिल्ली से यही देखने आईं थीं ?

पेरिन नाराज हो गई – तुमने मना कर दिया होता ।

रात को दोनों दिल्ली लौट आए ।

कई दिन हो गए, पेरिन बंगले से कहीं बाहर न गई । श्रीमंत को चौथे दिन जब पता चला तो उसे ताज्जुब हुआ ।

पेरिन ने बताया – मैंने म्युजिक टीचरी की नौकरी छोड़ दी ।

श्रीमंत चुप रहा ।

एक दिन श्रीमंत की मां आई । उस दिन कोई मेला और त्यौहार था । सारे नौकर–चाकर पेरिन से छुटट्ी लेकर चले गए थे । उस दिन अकेले मां ने घर का सारा कामकाज किया । रात का खाना बनाया । षाम को श्रीमंत दफ्तर से लौटकर बोला – चलो, हम लोग कहीं बाहर खाना खायेंगे ।

पेरिन ने बताया – मां ने खाना बनाया है।

– क्यों ?

– मां बहुत अच्छी है, घर का सारा कामकाज भी अकेले कर डाला है ।

श्रीमंत ने कहा – क्या तुम अच्छी नहीं हो पेरिन ?

पेरिन ने मुस्कराकर कहा – सुनो, मां को यहीं अपने घर ही रखते हैं । बहुत ही अच्छा खाना बनाती हैं ।

पेरिन चिढ़ गई – कैसी बातें करते हो ?

– तुम कैसी बातें करती हो ?

पेरिन ने गुस्से से कहा – अगर वह असली मां होती तो पता नहीं क्या करते ।

– पेरिन !

श्रीमंत की वह चीख पूरे बंगले में बिजली की तरह कौंध गई ।

मां उसी रात अपने घर वापस चली गई । श्रीमंत ने पेरिन को अपनी बांहों में भरकर कहा – यह हमें क्या हो रहा है ? हम ऐसे बुरे व्यवहार क्यों करने लगे ? एक–दूसरे को कष्ट क्यों देने लगे ?

यह कहते हुए श्रीमंत सहज ही पेरिन को चूमने को हुआ, पेरिन ने घबराकर अपने हाथों से मुंह छिपा लिया ।

दूसरे दिन कंपनी के कुछ मेहमान रात को खाने पर आए । डिनर के समय तक पेरिन कमरा बंदकर सोई पड़ी रही । डिनर के लिए मना कर रखा था । श्रीमंत के बहुत मनाने पर वह बाहर निकली । मेहमानों के आग्रह पर उसने खाना षुरू किया और इस तरह खाया कि श्रीमंत को अपमानित होना पड़ा । मेहमानों को विदा करके श्रीमंत ने कहा – तुम्हें डाक्टर को दिखाना चाहिए ।... पेरिन चुप थी । आखिर कुछ कहने के लिए बोली – तुम्हारे असली पिता की तब अवस्था क्या थी ?

– कब ?

– जब वह षैतान तुमसे मिलने आया था ।

श्रीमंत बोला – ऐसी भाषा मत बोलो ।

– तुम्हें अब भी लगाव है ?

– तुम्हारा मतलब क्या है ?

– कुछ बातें करना ।

– कोई और बातें नहीं कर सकतीं ?

– अच्छा तुम करो कोई बात ।

श्रीमंत ने सोचते हुए कहा – कुछ दिनों के लिए तुम अपने मां–बाप के पास चली जाओ ।

पेरिन बोली – कुछ दिनों के लिए तुम अपने मां–बाप के पास क्यों नहीं चले जाते ?

– ठीक है । कल चला जाऊंगा । पर तुम यहां अकेली क्या करोगी ?

पेरिन ठहाका मारकर हंस पड़ी – देखो ! देखो ! हम एक–दूसरे को कितना छोटा बनाते चले जा रहे हैं । देखो ··· देखो ··· हम कितने छोटे होते चले जा रहे हैं ··· देखो ··· देखो ···

पेरिन पूरे बंगले में दौड़ती हुई यही दुहराने लगी । श्रीमंत ने सोचा, पेरिन की तबियत अचानक खराब हो गई है । उसने झट डाक्टर को टेलीफोन किया । टेलीफोन पर ही उसकी डाक्टर से कुछ बातें होने लगीं। श्रीमंत बताने लगा – जी हां, कई बार ऐसा हुआ है । जब वह अपने पति के साथ थी ···

पेरिन ने बढ़कर फोन छीन लिया – हेलो डाक्टर, हमने एक–दूसरे को ऐसी बहुत–सी बातें बताई हैं, जो निरी भावुकता में कही गई हैं । उन्हें सोलहों आने सच मान लेना, क्या हमारी बेवकूफी नहीं ? सुनिए ! हेलो ! आपको यहां आने की कोई जरूरत नहीं । आप अपनी फीस का बिल भेज दीजिएगा । मेरी बात सुनिए । मेरी सिर्फ एक बात का जवाब दीजिए ··· हेलो ··· जब हम एक–दूसरे को जानने लगते हैं, आपस में परिचित होते हैं, तब हम मुंह नोंचना क्यों षुरू करते हैं ?

श्रीमंत ने बढ़कर टेलीफोन छीन लिया और उसे फर्ष पर पटकते हुए कहा – क्योंकि हम उसी मुंह से प्यार करते हैं, खाते हैं और उसीसे बकवास करते हैं ।

उसका सारा मुंह जैसे जलने लगा । वह अपने कमरे में गया । कमरा जैसे उसे निगल जाएगा । वह बाहर लान में आ खड़ा हुआ ।

जाड़ों के दिन थे, पर लग रहा था लू चल रही है ।

थोड़ी देर बाद श्रीमंत ने पेरिन को बरामदे के किनारे फर्ष पर बैठे देखा, वह षायद चुपचाप रो रही है ।

श्रीमंत हिम्मत करके उसके पास गया । उसके सिर पर हाथ रखकर बोला – मैं तुमसे क्षमा चाहता हूं । लेकिन मैं आपसे अकेले में कुछ बाते करना चाहता हूं ।

फिर उसने निहायत धीमी आवाज में कहा – कहां गया हमारा 'वह' ? उसे क्या हो गया ?

उस रात बिलकुल सारी रात दोनों पलंग पर पड़े–पड़े महाबलीपुरम, केरल के समुद्रतट, बस्तर के आदिवासियों के बीच उस गांव में जिए हुए जीवन की बातें करते रहे । अगली रात फिर इसी तरह से श्रीमंत अपनी पत्नी मीनाक्षी की बातें करता रहा । पेरिन अपने छोड़े हुए पति अषोक के साथ घटी हुई घटनाओं को याद करती रही ।

श्रीमंत ने दुःख में डूबकर कहा – अब क्या हम पुरानी बातों में ही जिन्दा रहेंगे ?

पेरिन ने तड़पकर कहा – बीती हुई घटनाओं के अलावा अब हमारे पास क्या है ?

पेरिन चुपचाप षून्य में एकटक न जाने क्या देखने लगी ।

श्रीमंत के स्वर उसके कानों में टकराए – जो वर्तमान नहीं जी पाता, वही बीती हुई घटनाओं में जाकर सिर छिपाता है । वही स्मृतियों से मन बहलाने की झूठी कोषिष करता है ।

पेरिन अब श्रीमंत के चेहरे को देखने लगी ।

श्रीमंत कहता जा रहा था – जो मौजूद है । जो है, जो इस वक्त वर्तमान है उसे जीना, उसका सामना करना बुजदिलों, स्वार्थियों और घमंडी लोगों का काम नहीं है ।

पेरिन ने बड़े ष्षांत भाव से पूछा – तो मैं बुजदिल हूं , स्वार्थी और घमंडी हूं !

– कैसे ?

– हमने एक–दूसरे को पकड़ लेना चाहा है, बांध और कैद कर लेना चाहा है । जो हो चुका है, हम उसीको दुहराना चाहते हैं ।

श्रीमंत दो दिनों से दफ्तर नहीं गया । पर वह घर पर आराम भी नहीं कर सका । लोग आते–जाते रहे । फाइलों पर उसे दस्तखत करने पड़ते थे । तंग आकर वह पेरिन के साथ बड़ी टैक्सी में बैठकर दिल्ली से कहीं बाहर जाने लगा ।

रास्ते में पेरिन ने पूछा – कम्पनी की गाड़ी तुमने क्यों नहीं ली ? आखिर वह इम्पाला हमारे इस्तेमाल के लिए है ...

श्रीमंत ने कहा – क्या तुम हर वक्त मुझे कम्पनी का ही नौकर बनाये रखना चाहती हो ?

– नहीं, तुम जरूरत से ज्यादा ईमानदार बनते हो ।

– हम घूमने जा रहे हैं या लड़ाई करने ?

श्रीमंत के इस प्रष्न पर पेरिन ने अजब भद्दे ढंग से कहा – तुम अब खुलकर लड़ाई भी नहीं कर सकते ।

– तुम कर सकती हो ?

– पर किसके साथ ?

– क्यों ?

– तुम इस लायक नहीं हो । तुम छोटी–छोटी बातों से ऊपर नहीं उठ सकते ।

– जिन्दगी छोटी–छोटी बातों से ही बनती है । तुम मुझे ओरों की तरह बनाना चाहती हो – बेईमान, कामचोर ... दुष्चरित्र ...

– मैं तुमसे प्यार करती हूं ।

श्रीमंत क्रोध से तिलमिला पड़ा – उसे कहने की जरूरत तुम्हें क्यों पड़ी ? क्योंकि अब वह नहीं है ।

इसके बाद श्रीमंत कुछ भी न बोला । चुपचाप रात को दोनों वापस लौट आए ।

पेरिन अब सुबह नाष्ता करके न जाने कहां चली जाती । रात को करीब उसी समय लौटती, जब श्रीमंत दफ्तर से वापस घर आया होता । वह तब ऐसे अनेक व्यवहार करती, जिससे कि उसमें और श्रीमंत में कहासुनी हो जाये । पर धीरे–धीरे

पेरिन अनुभव करने लगी कि श्रीमंत में अब किसी तरह की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । तब एक दिन, रात को पेरिन ने श्रीमंत के सामने खड़े होकर पूछा – क्या वह सचमुच मर गया ?

– क्या ?

– जिसे हमने मिलकर जन्म दिया था ।

श्रीमंत ने कहा – वह मर गया । उसे हमने ही जन्म दिया और हमने ही मिलकर उसे मारा ।

पेरिन फफककर रो पड़ी – क्यों ? क्यों···

श्रीमंत बोला – क्योंकि हम उससे प्रेम करने लगे । इस तरह हमारा एक साथ रहना, हमारा यह सम्बन्ध, हमारा परिचय, यह केवल हमें मार सकता है । चाहे पति–पत्नी हों, चाहे यह अवैध सम्बन्ध, दोनों हिंसात्मक और पषुत्वसूचक हैं । दोनों केवल हाथ बांधते हैं और छोटा बनाते हैं । वह, वह नहीं है जिसे हम पकड़कर बांध लेना चाहते हैं ।

पेरिन चिल्लायी – हमारा वह अवैध सम्बन्ध नहीं है···

– जो स्वतंत्र नहीं है, वह अवैध है ।

यह कहकर श्रीमंत सामने से हट गया ।

सुबह श्रीमंत का कहीं पता नहीं था ।

10

एक ओर पहाड़ियां थीं, दूसरी ओर एक बरसाती नदी बहती थी । दोनों के बीच गरीब किसानों और भूमिहीन मजदूरों के छोटे–छोटे गांव थे । हर साल नदी में बाढ़ आती तब वे गांव बह जाते । तब गांव के लोग अनाथ होकर ढोर–डंगर बाल–बच्चों को लेकर उन्हीं पहाड़ियों में चले जाते । जवान स्त्री–पुरूष मजदूरी के लिए पास के षहर में चले जाते । जब बाढ़ का पानी सूख जाता, तब गांव के लोग अपने गांवों में लौटते । फिर वहां मलेरिया और चेचक की बीमारी फैलती और एक चौथाई लोग मर जाते । ऐसा उनके बाप–दादों के जमाने से होता चला आ रहा था ।

श्रीमंत घूमता–घूमता एक दिन उसी अनजान जगह पहुंचा था । तब वर्षा के दिन बीत गये थे । बाढ़ का पानी गांवों में सूख चला था । वह गांव के लोगों को लेकर नदी के किनारे–किनारे बहुत दूर तक एक ऊंचा बांध बनाने के काम में लग गया ।

जब बांध बनकर तैयार हो गया तब वह गांव के लोगों के साथ पहाड़ी जमीन को सममतल करने के काम में लगा ।

उन्हीं ऊंचाईयों पर त बवह गांव वालों के साथ उनके लिए छोटे–छोटे घर बनवाने में जुट गया । जहां गांव की बस्तियां बसी थीं, उस नयी जमीन पर लोग खेती करने लगे । अब सबके खेत दुगुने हो गये थे ।

पूरा वर्ष बीत गया । गांव के लोगों ने अब तक तीन फसलें काटी थीं । नदी के रोके हुए पानी से दो नहरें काटकर उस धरती पर उनसे सिंचाई हुई थी ।

नदी में गांववालों ने नावें बनाकर डाल दी थीं । जाल डालकर उनसे मछलियां बटोरी जातीं । षहर से उनका मछली का व्यापार होने लगा ।

दो वर्ष का समय वहां गांव वालों के साथ श्रीमंत का बीत गया । अगले वर्ष बहुत वर्षा हुई । बाढ़ के पानी ने एक जगह बांध को तोड़ दिया ।

श्रीमंत गांव वालों के साथ दिन–रात उसी बाढ़ के अपार जल से लड़ता हुआ बांध बनाने के काम में लगा था ।

वहीं एक दिन उसने किसान और मजदूरों के बीच, जवान स्त्री–पुरूष, बूढ़े, बच्चों के बीच एक नयी स्त्री को उनके साथ काम करते हुए देखा ।

श्रीमंत ने एक दिन गांव वालों से पूछा – यह स्त्री कौन है ? कहां से आयी है ? गांव के लोगों ने बताया – वह स्त्री अपना परिचय नहीं बताती । वह सिर्फ इतना बताती है कि वह षहर से यहां मजदूरी करने आयी है ।

वह श्रीमंत के सामने नहीं आती । बांध बनकर तैयार हो गया । बाढ़ का पानी गांव की धरती पर बहने से रूक गया ।

एक दिन श्रीमंत उसे गांव की स्त्रियों में काम करते हुए देखकर सहसा पुकार पड़ा –पेरिन ।

– क्या है ?

– कुछ भी नहीं ।

– तुम मुझे तलाषती रहीं ?

– नहीं ।

– मैं श्रीमंत हूं ।

– मैं कुछ भी नहीं जानना चाहती ।

वे दोनों उन गांवों में काम करते । जो घर बाढ़ के पानी से गिर गये थे, उन्हें बनाने में लगे थे । दोनों में कोई बात नहीं होती ।

वे दोनों काम करते । गांवों में फैले मलेरिया और चेचक की बीमारी से लड़ते । मरीजों को दवा देते । सुइयां लगाते । घरों की सफाई में, खेती के काम में हाथ बंटाते ।

धीरे–धीरे दोनों स्वच्छंदता के साथ गांवों में, लोगों के घरों में घूमते ।

संध्या समय वे एक खुली नाव लेकर नदी के उस पार एक ऊंची पहाड़ी पर चले जाते । वहां चौरस पठार पर घूमते । वहां से तब उन्हें दूर वह छोटा सा षहर दिखायी पड़ता । ऊंची चिमनियों में से काले धुंए के बादल दिखाई देते । वह कहता – अपनी यात्रा में अक्सर मैं तुम्हें पत्र लिखा करता था और फिर उन्हें फाड़ देता था ।

वह उसे निहारती रह जाती थी ।

वह कहता चला जाता – हमेषा कल्पना करता था, कहीं तुमसे जरूर मुलाकात होगी, पर महाबलीपुरम में नहीं । कुछ और ... कहीं ... और ... वह ... और तब वे एकदम मौन हो जाते ।

तब वे फिर नाव में बैठकर इस पार आते । पानी की धार में नाव को बहते हुए छोड़ देते और एक–दूसरे को आलिंगन में बांध लेते ।

जैसे–जैसे संध्या होने लगती, नदी के उस किनारे गांव वालों की नावों की लगी हुई कतार दिखती । डूबते हुए सूरज की किरनें हवा से हिलते हुए जल पर कांपतीं । गांवों से कुत्तों के भूंकने की आवाज सुनाई पड़ती ।

इस पार आकर दोनों बालू पर खेलने लगते थे । गांव की स्त्रियां उनके लिए कभी तली हुई मछली दे जातीं, कभी दूध में पकाया हुआ चावल । वे दोनों एक–दूसरे को देखते हुए खाते ।

कभी वे काम से थककर किसी हरे–भरे खेत में, घास के मैदान में बच्चों की तरह लेट जाते । एक–दूसरे का चुम्बन लेते और तब ऐसा लगता कि यहां ये युग–युग से रहते चले आये हैं ।

वहां उन गांवों में, उन पहाड़ियों में, नदी के किनारे इस पार और उस पार, यह पहला अवसर नहीं था जबकि उन दोनों ने वृक्षों की पंक्तियां देखी थीं । नीला आसमान देखा था । उन्होंने पहले भी आनन्द लिया था, पर तब उनके बीते हुए जीवन, पहले की घटनाएं उन्हें अचानक काट देती थीं ।

किन्तु इसमें संदेह नहीं कि जीवन में और कभी उन्होंने इस आज जैसे आनन्द का अनुभव नहीं किया था ।

पहले तब उसका नाम था – वह ।

आज वह जीवन हो गया । नाम रह ही नहीं गया । जब दोनों एक होते तब उसका सिर उठा हुआ रहता । हाथों की मुट्ठियां बंधी रहती थीं और आंखें षून्याकाष में टिकी रह जाती थीं । उनके आसपास के घास–पात, हवा, जल, सब कुछ जैसे उनमें विलीन हो जाता और दोनों सब में विलीन हो जाते । और फिर अचानक दोनों एक–दूसरे के सामने बिलकुल नये सिरे से प्रकट हो जाते ।

श्रीमंत पूछता – वह है···

पेरिन कहती – एक षून्य, जिसमें बिजली चमकती है । हवा बहती है । हवा से सिहरन का अनुभव होता है ।

• • •

1.	श्रंगार	–	निरंजन सिंह
2.	अपना–अपना राक्षस	–	विपिन
3.	बड़ी चम्पा–छोटी चम्पा	–	बलराम
4.	बयां का घोंसला और सांप	–	अजय गुरहा
5.	कसक	–	धर्म
6.	रूपाजीवा	–	दीपांषु कम्प्यूटर
7.	मन वृन्दावन		
8.	काले फूल का पौधा		
9.	प्रेम अपवित्र नदी		

1. श्रृंगार
2. अपना–अपना राक्षस
3. बड़ी चम्पा–छोटी चम्पा
4. बयां का घोंसला और सांप
5. कसक
6. रूपाजीवा
7. मन वृन्दावन
8. काले फूल का पौधा
9. प्रेम अपवित्र नदी